संस्थापक : योगयोगेश्वर अनन्तश्री ... महाराज

सिद्धयोग

वर्ष : 46
अंक : 3
जून 2013

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन सवाई-282002 (आगरा) उ०प्र०

अमृत कण

माता च कमला देवी पिता देवो जनार्दनः।
बान्धवा विष्णुभक्ताश्च स्वदेशो भुवनत्रियम्।।

(चाणक्यनीति दर्पण)

अर्थात् लक्ष्मी देवी जिसकी माँ है, सर्वव्यापक आनन्द दाता परमेश्वर जिसका पिता है और परमेश्वर के भक्त जिसके बन्धु हैं ऐसे मनुष्य के लिए तीनों लोक ही अपने देश के समान हैं।

◆ ◆ ◆

अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिर पैशुनम्।
दया भूतेष्वलोलुप्त्वं ह्रीरचापलम्।।

(श्रीमद् भगवद्गीता)

अर्थात् मन, वचन, कर्म से किसी को कष्ट न देना, यथार्थ और मधुर वचन बोलना, अपने प्रति अपकार करने वाले पर भी क्रोध न करना, चित्त में शान्ति रखना, किसी की निन्दा न करना, सबके प्रति दयाभाव रखना, विषयों के प्रति आसक्ति व अति न करना, लोक और शास्त्र की मर्यादा के विरुद्ध आचरण में लज्जा करना और व्यर्थ काम न करना – ये सब सच्चरित्रता के लक्षण हैं।

◆ ◆ ◆

भद्रं कर्णेभि श्रुणुयाम देवाः भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।
स्थिरैरंगैस्तुष्टुवा सस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः।।

(ऋग्वेद)

हम कानों से शुभ विचार ही सुनें, आँखों से शुभ दृश्य ही देखें। स्वस्थ एवं सबल शरीर तथा शुद्ध मन से प्रभु की स्तुति करते हुए, विद्वानों की मर्यादा से युक्त कल्याणकारी आयु (जीवन) को भली भांति प्राप्त करें।

◆ ◆ ◆

दुराचारो हि पुरुषो लोके भवति निन्दितः।
दुःख भागी च सततं व्याधितोऽल्पायुरेव च।।

(मनुस्मृति)

दुराचरण करने वाले चरित्रहीन व्यक्ति की सब जगह निन्दा होती है, वह सदा दुःखी व रोगी रहता है और पूरी आयु न भोग कर अकाल मौत मरता है (अर्थात् अपनी पूरी आयु न भोग कर रोगों के कारण क्षीण–काय होने से अकाल मौत मरता है वरना पूरी आयु भोगता)।

◆ ◆ ◆

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक–पत्र

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्राप्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणानाम् भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

अर्थ :—शुद्ध (निर्विकार) स्वभाव वाले परम ब्रह्म का ध्यान करते–करते मृत्यु के मुख में पड़ा हुआ मनुष्य शीघ्र ही मुक्ति को प्राप्त हो जाता है। उस मुक्ति की प्राप्ति के उपाय स्वरूप योग ध्यान शास्त्र के सिद्धान्तों की विस्तृत व्याख्या करने वाली ''सिद्धयोग'' नामक पत्रिका सत्पुरुषों के परम कल्याण की सिद्धि (प्राप्ति) में सक्षम व सहायक हो।

वर्ष : 46 जून – 2013 अंक : 3

बन्धकारण शैथिल्यात्प्रचार संवेदनाच्च चित्तस्य परशरीरावेशः।।

(पातं.यो.द विभूतिपाद 3/38)

चित्त के बन्धन का कारण कर्म–संस्कार है; कर्मों का फल भुगतने के लिए ही यह चित्त किसी एक शरीर में बंधे रहने के लिए बाध्य हो जाता है। उक्त बन्धनके कारण रूप कर्म संस्कारों को जब मनुष्य समाधि के अभ्यास द्वारा शिथिल करके चित्त को स्वच्छ बना लेता है और साथ ही जिन–जिन मार्गों द्वारा चित्त शरीर में विचरता है, उन मार्गों को और चित्त की गति को भी भली भाँति जान लेता है; तब उसमें यह सामर्थ्य आ जाती है कि वह अपने चित्त को शरीर से बाहर करके दूसरे के (मृत या जीवित) किसी भी शरीर में प्रविष्ट कर सकता है। चित्त के साथ–साथ इन्द्रियां भी जहाँ चित्त जाता है, वहाँ अपने–आप चली जाती हैं।

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सयांई (एत्मादपुर) आगरा

-SIDDHYOG-

HINDI MONTHLY

Propagating Yoga & Spiritual values

संस्थापक :

योग-योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :

आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक

डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :

समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष एवं गुरु भाई-बहिन

अनुक्रमणिका

1.	विशेष लेख – योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज	3
2.	सम्पादकीय	7
3.	गुरु गीता – डॉ. जे. पी. शर्मा	11
4.	मंत्र महामणि विषय व्याल के... – डॉ. रुद्रदत्त चतुर्वेदी	18
5.	श्री मद्भगवत में योग परिचर्या – डॉ. विजय सिंह	20
6.	श्री रामलाल जी महाराज का काय–निर्माण–अनिल कुमार सिंह	23
7.	संयम द्वारा प्रातिभज्ञान तथा सिद्धियाँ – प्रो. ऋषिराम शर्मा	27
8.	योगेश्वर मैं तुम्हारी दया चाहती हूँ – डॉ. ममिता सिंह	32
9.	करता हूँ जय जय कार – जगदीश राए बंसल	33
10.	योग आसन – मुक्त पद्मासन	34
11.	श्री गीतामृत पदावली	35
12.	मुझे प्रभु का दर्शन मिला – राघवेन्द्र कुँवर शुल्क	38
13.	एक गुरु मंत्र – श्रीमती शारदा सिसौदिया	40

एक प्रति	: रु. 20.00
वार्षिक शुल्क	: रु. 150.00
द्विवार्षिक	: रु. 280.00
आजीवन (10 वर्षीय केवल)	: रु. 900.00

• *विशेष लेख*

सिद्ध दर्शन का उपाय - स्वाध्याय

योग-योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

योग का उपदेश करते हुए भगवान ने अर्जुन से कहा '**असंयतात्मना योगो दुष्प्राप इति मे मतिः**' अर्थात् जो संयतेन्द्रिय नहीं हैं संयमी नहीं हैं उन्हें योग प्राप्त होना कठिन है। यह सुनकर अर्जुन सोचने लगा मैं संयमी नहीं हूँ। मैं तो एक गृहस्थी हूँ यदि मैं योगाभ्यास करूँ किन्तु पूर्णता को प्राप्त न कर सका ऐसा सोचकर अर्जुन ने भगवान से प्रश्न किया – भगवन् ! यदि कोई व्यक्ति पूर्णरूपेण संयतेन्द्रिय नहीं है किन्तु योगाभ्यास में श्रद्धापूर्वक लगा हुआ है इस प्रकार से लगा हुआ वह व्यक्ति इस जन्म में तो कदाचित् योग प्राप्त न कर सके और बीच में ही उसका शरीर छूट जाये तो उसकी क्या गति होगी? कहीं ऐसा तो नहीं है कि वह इहलोक और परलोक दोनों से नष्ट हो जाये। मेरे मन में यह संशय है आप ही मेरे इस संशय को दूर कर सकते हैं। इस संशय को दूर करने वाला आपके अतिरिक्त मुझे और कोई दिखाई नहीं देता।' इसका उत्तर देते हुए भगवान कहने लगे – पार्थ ! '**नैवेह नामुत्र विनाशस्तस्य विद्यते**' हे अर्जुन! ऐसा कल्याण के मार्ग में लगा हुआ व्यक्ति न यहाँ नष्ट होता है और न ही परलोक में। ऐसा योग भ्रष्ट व्यक्ति शरीर छूट जाने के बाद फिर पवित्र एवं धनवानों के कुल में जन्म लेता है। अथवा योगियों के घर में ही उसका जन्म होता है मनुष्य जन्म लेने के बाद अनुकूल वातावरण पाकर पूर्व देह में विद्यमान योग के संस्कार को – बुद्धि संयोग को पा जाता है इस प्रकार से वह पुनः योगाभ्यास करता है। मैं तुम्हें समझा रहा था कि विचारानुगत समाधि में ही योगाभ्यासी के योगच्युत होने का भय होता है। इस प्रकार से यदि योगी विचारानुगत समाधि का अभ्यास करते–करते पूर्णता को नहीं पा सकता है तो वह बार–बार मानव जन्म लेकर योगाभ्यास में लग जाता है। योग दर्शन में भी भगवान पतंजलि जी ने ठीक इसी बात को समझाया है –

'**भवप्रत्ययो विदेह प्रकृतिलयानाम्**' अर्थात् विदेह देवता और प्रकृति लीन योगी भव प्रत्यय वाले योगी कहलाते हैं। इनमें जन्मजात समाधि के संस्कार पाये जाते हैं। स्वर्ग के देवता अमर कहे जाते हैं। वे मलमूत्र त्यागने वाले नहीं होते। हमारे योग शास्त्र में खेचरी मुद्रा का वर्णन आता है '**नतस्य क्षुधा न तृष्णा यो वेत्ति मुद्रां खेचरीम्**' जो खेचरी मुद्रा के अभ्यासी योगी हैं उन्हें भूख प्यास आदि नहीं लगते। हिमालय में रहने वाले योगी भी भोजन आदि नहीं करते। खेचरी से अमृत का पान करते रहते हैं। अन्न ग्रहण की उन्हें आवश्यकता नहीं पड़ती। इसी प्रकार से स्वर्ग के देवता अमृत पीते रहते हैं योगी लोग तो खेचरी से अमृत पीते हैं किन्तु उन्हें (देवताओं को) यह स्वाभाविक प्राप्त है। हमारे जो देवरहा बाबा हैं वे भी खेचरी सिद्ध हैं। जो कोई उनके पास जाकर श्री प्रभु रामलाल जी का नाम लेता है तो वे उसे प्यार से बैठाते हैं प्रसाद आदि

देते हैं। मेरे बच्चे आगरा के जगन प्रसाद रावत है उन्होंने देवराहा बाबा से खेचरी मुद्रा के बारे में पूछा था। उन्होंने खेचरी मुद्रा के बारे में विस्तार से बताते हुए कहा था कि श्री प्रभुजी ने अपने स्वहस्त लिखित पुस्तक में भी लिखा है कि मुरादाबाद के पास एक ब्राह्मण बालक खेचरी का अभ्यास करता था किन्तु पूर्ण नहीं हो रहा था। हमने उसे पूर्ण करा दिया। मेरे कहने का अभिप्राय यह है कि योगी लोग हिमालय में रहते हुए खेचरी के अभ्यास से हजारों वर्षो तक शरीर को रखे रहते हैं। मैं एक सच्ची घटना सुनाता हूँ। एक महात्मा थे ज्योति प्रकाश आश्रम। वे हिमालय में सिद्धों की तलाश करते रहे उन्हे कोई योगी–सिद्ध नहीं मिला। यह घटना 10–15 वर्ष पूर्व कल्याण पत्रिका में भी छपी थी। **'देहम् वा पातेयम् कार्यम् वा साधेयम्'** के ध्येय पर वह दृढ़ हो गया। यह बात हर साधक में आनी चाहिए। योग दर्शन में आता है **'स्वाध्यायादिद्दष्ट देवता सम्प्रयोग:'** स्वाध्याय से इष्टदेव के दर्शन होते हैं जो लोग जप तप और ध्यान में लगे रहते हैं उनको इष्ट देव, के देवताओं के व सिद्धों के दर्शन होते हैं।

महात्मा ज्योति आश्रम कन्दमूल–फूल आदि खाकर चलते रहते थे। अन्त में एक दिन उन्हे एक ब्रह्मचारी मिले। ये 25–26 वर्ष के दिखाई दे रहे थे। सिर के बाल काले थे शरीर हृष्ट–पुष्ट दिखाई दे रहा था। उन्होंने इनसे पूछा – **'कस्त्वम्, कुतश्चायात:?'** तुम कौन हो, कहाँ से आये हो? इन्होने उत्तर दिया – मैं ऋषिकेश से आया हूँ। मुझे सिद्ध दर्शन की इच्छा है मैं हिमालय में सिद्धों के दर्शन की इच्छा से ही भटक रहा हूँ। उन ब्रह्मचारी ने कहा – तुमने कितना स्वाध्याय किया है, जप–तप कितना किया है? उसने कहा – जप–तप व स्वाध्याय तो मेरा विशेष नहीं है ब्रह्मचारी ने उत्तर दिया – तुम्हें सिद्धों के दर्शन नहीं हो सकते। खैर वे ब्रह्मचारी उन्हें आगे ले गये और एक वट वृक्ष की खोल में बैठा दिया। एक जड़ी दिखा दी और कहा – इस जड़ी को खा लिया करना इसमें तुम्हें आठ दिन तक भूख नहीं लगेगी। आठवें दिन फिर जड़ी को खा लिया और फिर स्वाध्याय के लिए बैठ जाया करना। इस प्रकार से जब तुम्हारा स्वाध्याय बढ़ जायेगा तब तुम सिद्ध दर्शन के अधिकारी बन जाओगे और तुम्हें सिद्ध दर्शन करा दूंगा। इस प्रकार कहकर ब्रह्मचारी चले गये। ज्योति प्रकाश आश्रम उस स्थान पर बैठकर एक वर्ष तक जाप–ध्यान आदि करते रहे।

एक साल के बाद वह ब्रह्मचारी पुन: आये और उनसे पूछने लगे– तुम्हारा स्वाध्याय ठीक चल रहा है? उन्होंने कहा हाँ, मेरा स्वाध्याय ठीक चल रहा है। उन ब्रह्मचारी ने कहा – स्वाध्याय करने से अब तुम सिद्धों के दर्शन के अधिकारी हो गये हो। चलो अब तुम्हें मैं सिद्धों के दर्शन कराता हूँ। आगे ले जाकर के सबसे पहले उन्होंने एक महात्मा के दर्शन कराये वे महात्मा बैठे हुए भी इतने ऊँचे थे जितने हम तुम खड़े होकर लगते हैं। महात्मा समाधि में बैठे हुए थे। ज्योति प्रकाश आश्रम ने पूछा ये समाधि से कब उठते हैं? ब्रह्मचारी ने कहा – ये 100 वर्ष में एक बार समाधि से उठते हैं। महात्मा ज्योति प्रकाश ने उस ब्रह्मचारी से पूछा – आपने इनको समाधि से उठे हुए कितनी बार देखा है? ब्रह्मचारी ने उत्तर दिया हमने इन्हें समाधि से सात बार उठे हुए

देखा है इसका मतलब यह हुआ कि 25 या 26 वर्ष के लगने वाले वे ब्रह्मचारी स्वयं सात सौ वर्ष से अधिक के थे। इसके बाद ब्रह्मचारी उन्हें आगे और गुफाओं में ले गये। वहा भी बहुत से योगी समाधि में बैठे हुए थे उन सब वृहत्‌काय सिद्धों के दर्शन कराये ज्योति प्रकाश ने ब्रह्मचारी से पूछा ये लोग कब से समाधि में बैठे हुए हैं। ब्रह्मचारी ने बताया ये लोग महाभारत के समय से ही बैठे हुए हैं महाभारत को हुए 5000 वर्ष से भी ऊपर हो गये। इसके बाद ब्रह्मचारी जी ने ज्योति प्रकाश आश्रम से कहा अब तुम वापिस चले जाओ। वह कहने लगा मैं अब वापिस नहीं जाऊंगा यहीं रहूंगा। इस पर ब्रह्मचारी ने कहा – यहाँ पर अन्न खाने वाला और मल मूत्र त्यागने वाला व्यक्ति नहीं रह सकता। यदि तू यहाँ रहेगा भी तो तुम्हें सिद्ध लोग यहाँ से उठाकर फेंक देंगे। तुम और स्वाध्याय बढ़ाओ जब तुम अधिकारी हो जाओगे तुम्हारा अन्तःकरण शुद्ध हो जायेगा तो हम लोग तुम्हें स्वयं ले लेंगे।

स्वामी ज्योति प्रकाशाश्रम वहाँ से लौट आये और आकर बिजनौर में भगवद्दत्तश्रोत्रीय से उपनिषद पढ़ने लगे। श्रोत्रीय जी संस्कृत ब्रह्म महाविद्यालय चलाते थे। वे मुझे ऋषिकेश में मिले थे। वे बताते थे कि एक बार के सुनने मात्र से ही उन्हें उपनिषदें याद हो जाती थीं। भगवद्दत्त जी मुझे बताते थे कि इधर वे उन्हें उपनिषद सुनाते जाते थे उधर उनको सारी याद हो जाती थी। चार छः महीने में सारी उपनिषदें याद हो गई। इसके बाद महात्मा ज्योति प्रकाश आश्रम फिर हिमालय चले गये। तो देखो ! वहाँ पर हिमालय में जाने पर ज्योति प्रकाशाश्रम को सिद्धों ने कहा कि मल–मूत्र त्यागने वाला यहाँ नहीं रह सकता है। सिद्धों ने उनसे यह भी कहा कि जो खाता है सो मरता है और जो सोता है वह मरता है। यह एक विचारणीय बात है मैंने तुम्हें कई बार अपने बचपन के साथी अगड़घत्ता की बातें बतलाई हैं। वह भी कहा करता था। 'कि जो खाता है सो मरता है जो सोता है वह मरता है हम न खाते हैं न सोते हैं इसलिए हम मरेंगे नहीं' मैंने तुम्हारे सामने अपने बड़े गुरु भाई श्री हरिहरानन्द का जिक्र कई बार किया है।

वे हिमालय में शीशा गिरि पहाड़ी पर समाधि में बैठे हुए हैं और तीन महीने में एक बार समाधि से उठते है। श्री आनन्दकन्द प्रभु जी हमारे गुरुदेव जी अपने मुखारविन्द से बतलाया करते थे कि हमारे बच्चों में हरिहरानन्द ऐसे बच्चे थे जिन्होंने षटचक्र विभेदन किया है और अजर–अमर होने का मतलब है उनका शरीर काल का ग्रास नहीं बनेगा। श्री प्रभु जी ने किस प्रकार उन्हें क्षण में ही तत्व विजयी सिद्ध होने का वरदान देकर अजर अमर बना दिया यह घटना मैं तुम्हें कई बार सुना चुका हूँ। मैंने अपने बच्चे रघुनन्दन प्रसाद टाट बाबा को हरिहरानन्द के स्थान का पता लगाने के लिए भेजा था वह शीशा गिरि पहाड़ पर तो पहुँच गया किन्तु वहाँ विषैली हवाओं के चलने के कारण वह उन तक पहुँच न सका किन्तु उसने पता लगा लिया कि दुर्गम पहाड़ी पर एक गुफा में हरिहरानन्द रहते हैं और तीन माह में एक बार उठा करते हैं। टाट बाबा ने वापिस आकर मुझे बताया कि वहाँ विषैली हवाओं के कारण मेरा शरीर फटने लगा था। खून बहने लगा इसलिए मैं लौट आया हूँ। इस समय हरिहरानन्द जी सौ सवा सौ वर्ष

के होंगे क्योंकि जब वे श्री प्रभु जी के चरणों में आये तो 25–30 वर्ष के थे। मेरे कहने का अभिप्राय जो लोग खेचरी सिद्ध कर लेते है वे अजर–अमर हो जाते हैं। हिमालय में बहुत से सिद्ध पुरुष हैं जो खेचरी आदि के द्वारा अजर–अमर हैं इस प्रकार से जो तत्वविजयी महासिद्ध होते हैं। वे अपने शरीरों को हजारों लाखों वर्षों तक रख सकते हैं। साधकों की दो गति होती है योगाभ्यास करने वाला यदि पूर्ण ब्रह्मचारी है तब तो वह सिद्ध हो जाता है यदि संयमी नहीं है और अभ्यास करता है किसी प्रकार से काम वासना में पड़कर के सफलता प्राप्त नहीं कर पा रहा है तो वह स्वर्ग के ऊंचे लोकों को प्राप्त होता है और लाखों वर्षो तक वहां रहता है। मैंने तुम्हारे सामने अपने बड़े गुरु भाई श्री गोपालानन्द जी के बारे में कई बार बताया है। श्री प्रभुजी उन्हें तत्व विजयी बनाने की इच्छा से साधना करा रहे थे। जिन दिनों वे अभ्यास कर रहे थे एक दिन उन्होंने मुझसे कहा – आज मैं अग्नि तत्व का आकर्षण करूँगा। वे समाधि में बैठ गये अग्नि तत्व का आकर्षण किया उनका शरीर जलने लगा शरीर पर हाथ नहीं रखा जा सकता था। दूसरे दिन उन्होंने मुझ से कहा – आज मैं जलीय तत्व का आकर्षण करूँगा। उस दिन उनका शरीर बर्फ की भांति ठण्डा हो गया हमारे शरीर में पृथ्वी, जल आदि पाँच तत्व हैं यदि योगी इन तत्वों पर अधिकार पा लेता है और खेचरी हो जाये तो अपने शरीर को अजर–अमर बना कर रख सकता है। श्री प्रभुजी ने ब्र. गोपालानन्द जी को ये साधनायें कराई किन्तु वे उच्चतम लक्ष्य को नहीं पा सके इस प्रकार से ये साधनायें विफल रहीं। अस्तु।

मेरे कहने का अभिप्राय है यदि सिद्धों के दर्शन और कृपा चाहते हो तो खूब स्वाध्याय करो। अन्तःकरण शुद्ध हो जाने पर सिद्ध लोग आँखों के सामने स्वयं आया करते हैं। इसलिए स्वाध्याय में – मन्त्र जाप में खूब मन लगाओ। तुम्हारे लिये यही सब प्रकार से कल्याण का मूल साधन है।

● ● ●

प्रशान्तमनसं ह्येनं योगिनं सुखमुत्तमम्।
उपैति शान्तरजसं ब्रह्मभूतमकल्मषम्।।

(गीता 6/28)

जिसका मन अच्छी प्रकार शान्त है, जो प्रपञ्च से रहित है, जिसका रजोगुण शान्त हो गया है – ऐसे इस सच्चिदानन्दघन ब्रह्म के साथ एकीभाव हुए योगी को अत्युत्तम आनन्द प्राप्त होता है।

संस्कार क्या व कैसे बनता है?

– योगाचार्य डॉ. दासलाल ब्रह्मचारी

भारतीय संस्कृति एवं अध्यात्म में 'संस्कार' शब्द बहुत ही व्यापक शब्द है। योग शास्त्र में इसका महत्व एवं रहस्य बहुत ही गूढ़ है। धार्मिक दृष्टि से देखें तो हमारे धर्म शास्त्र एवं स्मृतियों के अनुसार ऋषियों ने मानव जीवन को गर्भाधान से अन्त्येष्टि के पिण्डदान आदि तक के सोलह संस्कारों की गणना की है। यद्यपि आज हिन्दुओं में भी सनातनियों को छोड़कर अन्य कई मत सम्प्रदाय एवं पन्थ के लोग इनमें से कई संस्कारों को त्याज्य मानकर छोड़ते चले जा रहे हैं। किन्तु यह उन लोगों की भूल है। ऋषि मन्त्र दृष्टा व तत्व एवं सत्य को जानने वाले होते हैं। वह मानव को व्यर्थ में कभी नहीं उलझाते। उन्होंने मनुष्य के इहलौकिक एवं पारलौकिक कल्याण की दृष्टि से ही सिद्धान्तों की रचना की है। अतः उन सिद्धान्तों में मिथ्यात्व का मिश्रण नहीं हो सकता। धार्मिक दृष्टि से संस्कार का अर्थ है सुसंस्कृत करना, मार्जन करना, दोषों का परिहार करना। जिस प्रकार से पृथ्वी के भूगर्भ से निकलने वाले खनिज पदार्थों को (सोना, चांदी, लोहा आदि) को मल दूर करके शुद्ध बनाकर उपयोग में लाते हैं और अपने दैनिक जीवन में इनका उपयोग करते हैं। आयुर्वेद में भी पारा आदि पदार्थों के अठारह संस्कार कर शुद्ध बनाकर स्वर्ण के रूप में प्रयोग करने का विधान बताया गया है। रस शास्त्र में उन रसों का उपयोग करके शरीर को शुद्ध व निर्मल बनाकर दीर्घ जीवन एवं कई प्रकार की सिद्धियों की प्राप्ति करने का उल्लेख मिलता है। रस सिद्ध योगी आकाश गमन आदि भी करते हैं। औषधिजा सिद्धि वाले योगी दिव्य औषधियों के प्रयोग से अनेक प्रकार की सिद्धियों से युक्त होते हैं।

मनुष्य जीवन को भी जब तक संस्कारों से परिमार्जित नहीं किया जाता है यह शरीर अशुद्ध, अपवित्र व शूद्र ही रहता है। मनुजी महाराज अपनी स्मृति में लिखते हैं – **'जन्मना जायते शूद्र, संस्कारात् द्विज उच्यते'** अर्थात् जन्म से मनुष्य शूद्र ही होता है यज्ञोपवीत आदि शुभ संस्कारों को प्राप्त कर लेने पर ही मनुष्य द्विज कहलाता है। मानव शरीर पवित्र होता है। यज्ञोपवीत धारण कर लेने पर मनुष्य द्विज बन जाता है और गायत्री मन्त्र की दीक्षा लेकर उसके प्रातः सायं जाप करने से जीवन को पवित्र एवं पाप रहित बना लेता है। हिन्दुओं की यह परम्परा बहुत ही उत्कृष्ट है शनैः शनैः जीवन में संध्या वन्दन में गायत्री जाप व ईश्वर जाप से मनुष्य पवित्र होता चला जाता है और ईश कृपा व गुरु कृपा का भाजन बन जाता है। जिस हिन्दु का यज्ञोपवीत संस्कार नहीं हुआ है वह व्यक्ति पतित की गिनती में आ जाता है।

संस्कार को हम प्रारब्ध के रूप में भी देख सकते हैं। वस्तुतः देखा जाए तो प्रत्येक घटना किसी कारण से जुड़ी हुई होती है कारण का ही कार्य सामने दिखाई देता है। इस तरह से

भूतकाल का सम्बन्ध वर्तमान से तथा वर्तमान काल का सम्बन्ध भविष्य से, योगीजन इन तीनों के सम्बन्ध को संयम द्वारा साक्षात्कार करके तीनों काल के ज्ञाता बन जाते हैं। महर्षि पतंजलि देव जी महाराज ने इस विषय में एक सूत्र दिया है जिसके आधार पर हम अपने पूर्व जन्म को जान सकते हैं। 'संस्कार साक्षात्करणात् पूर्वू जाति ज्ञानम्' अर्थात् संयम सिद्धि के हो जाने पर योगी जब संस्कारों का साक्षात्कार करके पूर्व जन्म को जानना चाहता है तो उसे पूर्व जाति या जन्म का साक्षात्कार हो जाता है। संयम के बल से वह भविष्य का ज्ञान प्राप्त कर सकता है। इसी कारण योगी लोग त्रिकालज्ञ कहे जाते हैं। स्वामी विवेकानन्द जी ने संस्कार शब्द का अनुवाद Impression के रूप में किया है। कर्म वासना ही चित्त में Impression के रूप में अंकित हो जाती है और कर्माशय में पड़ा रहता है। समय अनुकूल आने पर फलोन्मुखी हो जाते हैं। जीव को अपने अच्छे व बुरे कर्म का फल तो अवश्य ही भोगना पड़ता है। यह अलग बात है कि योगी लोग अपने कर्म संस्कार को फल देने से पहले ही सूक्ष्म में भोग लें अथवा नष्ट कर दें यह उनकी अपनी योग्यता और क्षमता पर निर्भर करता है।

मनुष्य के जीवन में अविद्या के कारण से चित्त में पंच क्लेश विद्यमान रहा करते हैं ये भी संस्कार व बीज रूप में चित्त भूमि में पड़े रहते हैं जब तक इनका अस्तित्व बना रहता है मनुष्य अविद्याग्रसित रहा करता है। ये प क्लेश अविद्या, अस्मिता, राग–द्वेष और अभिनिवेश के रूप में चित्त में विद्यमान हैं इनमें अभिनिवेश नामक क्लेश की व्याख्या करते हुए सूत्र दिया है –

'स्व रसवाही विदूषोऽपि तथा रूढोऽभि निवेश:' अर्थात् जन्म जन्मान्तर के संस्कारों से प्रवाहमान विद्वानों में भी उसी प्रकार से व्याप्त रहने वाला अभिनिवेश अर्थात् मृत्युभय नाम का क्लेश है। इस क्लेश से जगत के सारे प्राणी सदा ही भयभीत रहते हैं। यह भय उनके पूर्व हुए मृत्यु दु:ख के कारण संस्कार रूप से चित्त में बना रहता है। जीव के गूढ़ संस्कार मृत्यु के उपरान्त भी नष्ट नहीं होते। यही कारण है कि जीव को जो योनि मिलती है उस योनि के गुण वृत्ति आदि संस्कार से ही उसमें आ जाते हैं। उदाहरण के लिए किसी जीव का कर्मफल यह है कि उसे सिंह की योनि मिले तो उसे यह योनि मिलते ही उसमें स्वभाव से ही सिंह के हिंसक वृत्ति आदि गुण धर्म स्वत: ही जन्म से ही प्रकट रहते हैं। इस सम्बन्ध में पतंजलि भगवान का एक सूत्र द्रष्टव्य है।

जातिदेश काल व्यवहितानामप्यानन्तर्य स्मृति संस्कारयो रेकरूपत्वात्

अर्थात् जाति, देश, काल, से व्यवहित होने पर भी उस जीव में पूर्व के संस्कार के अनुसार स्मृति (अभिवयञजक) सहायक कारण के उपस्थित होने पर वैसा ही स्वभाव व लक्षण प्रकट हो जाता है। तात्पर्य यह है कि पूर्व में किसी समय वह जीव सिंह की योनि में था। बीच में अन्य–अन्य योनियों में भटकता रहा फिर कर्म विपाक के अनुसार पुन: सिंह योनि मिलने पर सिंह के शरीर के गुण धर्म प्रकट हो जाते हैं। इस प्रकार से जीव चाहे बीच में दूसरे शरीर में रहे या दूर देश में रहे या बहुत समय पहले रहे यह सब व्यवधान नहीं बन सकते। उस योनि की

प्राप्ति होने पर स्वतः ही लक्षण प्रकट होकर कार्य करने लगते हैं। सभी जीवों को अपने शुभाशुभ कर्मों का फल अवश्य ही भोगना पड़ता है। चाहे कभी भी भोगना पड़े। बिना फल भोगे कर्म विधान नष्ट नहीं होता। इस सम्बन्ध में गुरुदेव अपने मुखारविन्द से प्रातःस्मरणीय ब्रह्मचारी गोपालानन्द जी महाराज का एक दृष्टान्त सुनाया करते थे। वह इस प्रकार है – एक दिन ऋषिकेश स्थित योग साधन आश्रम में श्री प्रभुजी के उपस्थिति काल में उनके लिए कुएं से जल खींचते हुए जंजीर में लगी कोई कील उनकी बाजू को दूर तक चीरती हुई गई। इससे रक्त प्रवाहित होने लगा। सभी गुरु भाई बहन कहने लगे – ब्रह्मचारी जी तो बहुत ही योग ध्यानी महापुरुष हैं फिर इनके साथ ऐसा क्यों हुआ? श्री प्रभुजी ने कहा – तुम सब ध्यान योगी हो। ध्यान में बैठकर इस घटना के कारण को जान लो। कई साधक ध्यान में बैठे उन्होंने श्री ब्रह्मचारी जी के पूर्व जन्म का साक्षात्कार किया और देखा कि उनके अपनी पत्नी के हाथ में गडासा मार देने के कारण पत्नी की मृत्यु हो गई थी। इस अपराध के फलस्वरुप ब्रह्मचारी जी का भी हाथ कटना था और मृत्यु को प्राप्त होना था। किन्तु ध्यान योग एवं गुरु भक्ति के प्रभाव से अत्यन्त सूक्ष्म में संस्कार का भुगतान हो गया। अस्तु। मनुष्य के राग–द्वेष से प्रबल संस्कार बनते हैं उनका भुगतान करने के लिए मनुष्य को उसी स्थान पर आकर संस्कार भोग करना पड़ता है। योग मार्ग बुरे संस्कार को बनने नहीं देता।

गीतोक्त योगभ्रष्ट एवं पातञ्जल योग के भवप्रत्यय वाले योगियों में पूर्व जन्म के योग समाधि के संस्कार कालान्तर में मनुष्य जन्म में बाल्यकाल से ही प्रकट रहते हैं।

मानव जीवन की यह विशेषता है कि मनुष्य योग मार्ग में चलकर अल्प पुण्य संस्कार को अत्यन्त पुण्य संस्कार के रूप में बदल सकता है और मनुष्य योग की उच्च भूमिकाओं को प्राप्त कर सकता है। परमादरणीय माता द्रोपदी देवी का इतना ही संस्कार था कि वे श्री प्रभुजी के दर्शन पाती और संस्कार का भुगतान हो जाता किन्तु इन्होंने श्री प्रभुजी के पावन चरणों में भगवान श्री कृष्ण का एक अत्यन्त भक्ति युक्त भजन सुनाया। श्री प्रभुजी प्रसन्न हो गए। इन्हें आशीर्वाद दिया और योग मार्ग में लगा दिया। आगे चलकर इनकी ध्यान योग की स्थिति बहुत ऊंची बन गई थी। श्री प्रभुजी इन्हें चतुर्भुजा कहकर पुकारते थे क्योंकि यह भगवान श्री विष्णु में लयता प्राप्त कर लिया करती थी। इस प्रकार से प्रायः हम सभी के जीवन में ऐसी घटनाएं हुई हैं जिसके कारण से गुरुकृपा हुई और साधकों के जीवन में योग के उज्जवल संस्कार बन गए जो कभी नष्ट होने वाले नहीं होते। अतः गुरुदेव भगवान का कहना था कि एक संस्कार अन्य शुभ संस्कार का जनक हुआ करता है। साधक को ध्यान योग परायण होना चाहिए ताकि उसकी उत्तरोत्तर उन्नति हो सके। योग साधक को चाहिए कि वह भौतिक सुख की कामना ना करें न ही उसमें आसक्त हों। हमारे पुराण – इतिहास में ऐसे उदाहरण मिलते हैं जिसमें एक जन्म के संस्कार का भुगतान किसी दूसरे युग में हुआ है। शूर्पणखा ने पति रूप में राम को पाने की इच्छा की थी किन्तु उस समय यह संस्कार पूरा नहीं हो पाया पुनः द्वापर युग में कुब्जा के रूप में मथुरा

में भगवान कृष्ण को चन्दन लगाकर प्रसन्न किया। भगवान ने उसके टेढ़ेपन को दूर कर दिया और सुन्दर रूप दे दिया। जनकपुर में सीता की सहेलियों ने राम के रूप को देखकर उन्हें अपने चित्त में बसा लिया और द्वापर में ये गोपियों के रूप में अवतरित हुई और भगवान का सान्निध्य मिला। पुराणों में वर–शाप के संस्कारक्रम का भुगतान दूसरे किसी जन्म में होने का बहुत प्रसंग मिलता है।

पतञ्जलि भगवान् कहते हैं कि योगी लोग संसार को दु:खमय ही देखते हैं। **'सर्वमेव दु:खं विवेकिन:'** विवेकी अथवा योगी के लिए सर्वत्र दु:ख ही है। योगी ध्यान के महासाम्राज्य में लीन होता है। उसे अक्षय सुख मिलता है किन्तु जब व्युत्थान में आ जाता है तो उसे संसार अत्यन्त दु:खमय भासित होता है और कह उठता है **'सर्वमेव दु:खं विवेकिन:'**।

इसलिए योग जब तक निर्बीज समाधि को प्राप्त नहीं कर लेता तब तक विश्राम नहीं पाता है। समाधिजन्य ऋतम्भरा प्रज्ञा के होने पर ही विवेक ज्ञान का उदय होता है। जड़ चेतना की ग्रन्थि का भेदन हो जाता है। जन्म–मरण का क्रम टूट जाता है। ऋतम्भरा प्रज्ञा के संस्कार अन्य सभी प्रकार के संस्कारों को रोक देते हैं। **तज्ज: संस्कारोऽन्य संस्कार प्रतिबन्धि:** अविद्या ग्रन्थि का भेदन हो जाता है। योगी को अध्यात्म प्रसाद मिल जाता है। योगी कृतकृत्य हो जाता है। इसलिए साधक को चाहिए ध्यान योग से ऋतम्भरा के संस्कारों को दृढ़ बनावे व कैवल्य पद के भागी बनें।

• • •

सूचना

श्री योग साधन आश्रम ऋषिकेश का वार्षिक महोत्सव

सभी गुरु भाई–बहनों को सूचित करते हुए हर्ष हो रहा है कि अपने योग साधन आश्रम रेलवे रोड ऋषिकेश का वार्षिक उत्सव इस वर्ष 16– 17 व 18 जून को तदनुसार रविवार, सोमवार व मंगलवार को अत्यन्त धूम–धाम के साथ मनाया जा रहा है।

अत: सभी गुरु भाई–बहिनों से निवेदन है कि महोत्सव में सम्मिलित होकर पुण्य के भागी बनें।

जय गुरुदेव की!

सचिव :
श्री विशन चन्द गर्ग

निवेदक :
आचार्य – पूर्ण चन्द शर्मा
रेलवे मार्ग ऋषिकेश
जि. देहरादून, उत्तराखण्ड

गुरु - गीता

– डॉ. जे. पी. शर्मा, गुरु आशीष सदन, पौंटा साहिब (हि.प्र.)

मिले गुरु जी से जो ज्ञान।
उसका न करे कभी अभिमान।।
अहंकार मन में नहीं आवे।
मिथ्या वचन न मुख से गावे।।
गुरु से कभी झूठ नहीं बोले।
हर पल गुरु सेवा में डोले।।
मुख से कड़वा वचन न कहे।
प्रतिक्षण नत मस्तक ही रहे।।
देव भी अगर देवें श्राप।
गुरु करते दूर सन्ताप।।
अकाल मृत्यु से गुरु बचावे।
गुरु यमराज से भिड़ जावे।।
गुरु द्रोही को कौन बचाये।
गुरु द्वेशी सदगति नहीं पाये।।
'गु' कहे गुणातीत है गुरुवर।
'रु' कहे रूप रहित अति सुन्दर।।
गुरु भक्ति में आनन्द आता।
आवागमन में फिर नहीं आता।।
श्रुति स्मृति जो नहीं जाने।
केवल गुरुसेवा पहिचाने।।
जो भी हैं संन्यासी भाई।
सदगति उन सबने पाई।।
गुरु सेवा भरे अन्तर्ज्ञान।
जिससे बनते सामर्थवान।।
गुरु भक्ति जो अपनाते।
भवसागर से वह तरजाते।।

गुरु है चिदानन्द का रूप।
गुणातीत भूषण और भूप।।
आत्मा में स्थिर बोध स्वरूप।
अमर अतीत अनन्त अरूप।।
पर से पर गुरु नित्यानन्द।
मन के नभ में पूरणचन्द।।
जैसे दर्पण में प्रतिमा आवे।
प्रतिमा अपना रूप दिखावे।।
गुरु ज्ञान को दर्पण जानो।
निज प्रतिमा उसमें पहिचानो।।
जाकी रहे भावना जैसी।
गुरु मूरति दीखे है, तैसी।।
पुरुष अंगुष्ट मात्र जो चेतन।
उसका करते हैं जो चिन्तन।।
भक्त के ध्यान में भाव जो आवे।
वह शिवा सुमुखी तुम्हें बतावे।।
गो–गोचर जहाँ नहीं जाते।
अगम स्वरूप वेद सब गाते।।
उसे कहते हैं ब्रह्मस्वभाव।।
योगीजन को उसका चाव।।
कृपा दृष्टि गुरुदेव की, देती ब्रह्म मिलाय।
ब्रह्मरूप के ध्यान में, स्वयं ब्रह्म बन जाय।।
तन मन धन से जो करे, गुरु सेवा मन लाय।
वह नर नरके भेष में, नारायण बन जाय।।
पिंड रूप पद में गुरु ध्यान।
भक्त ब्रह्म सम होत समान।।
जीवन मुक्त उसी को जानो।
इसमें संशय कभी न मानो।।

माता पार्वती जी बोली :

दोनों कर जोड़ कहे भवानी, देवों के देव सुनो मम वानी।।

पिंड किसे कहते हैं स्वामी, यह समझाओ अन्तर्यामी।।
पद का भेद मुझे बतलाना, रूप का मतलब भी समझाना।।
रूपातीत भी वर्णन करो, संशय मेरा दूर करो।।

शिव जी बोले :

प्रेम सहित सुन सुमुख सयानी।
पिंड रूप पद करूं बखानी।।
पिंड कुण्डलिनी शक्ति को कहते।
गूढ़ ज्ञान हम तुमको देते।।
सुन गौरी पद हँस कहाता।
रूप बिन्दु बुद्धि में आता।।
रूपातीत है रूप निरंजन,
उसे ब्रह्म कहते योगीजन।।
उसी निरंजन का दीदार।
करते नर हैं, नैया पार।।
कृपा करे अगर गुरु निरंजन।
स्प्रहा रहित हो जाता तन मन।।
संग सहित करता गुरु ज्ञान।
करना शान्त गुरु का ध्यान।।
कहे असार सकल संसार।
केवल गुरु का ज्ञान आधार।।
करे गुरु ध्यान ब्रह्ममय होवे।
ब्रह्म के अन्दर वह लय होवे।।
हो निष्काम करे गुरु सेवा।
गुरु सेवा से मिलती मेवा।।
वह मेवा है मोक्ष की, सुन गौरी धर ध्यान।
उससे परमानन्द को, पाते भक्त सुजान।।
आगे सुनो हिमाचल जाई।
गुरु भक्ति की करूँ, बढ़ाई।।
जो अखण्ड पद श्रुति ने गाया।
जिससे होती निर्मल काया।।

उस पद को योगीजन पावे।
अजर अमर योगी बन जावे।।
योगी करता जहाँ निवास।
होता वहाँ परमानन्द का वास।।
पुण्य धाम उसे सब कहते।
सदा वहाँ योगी जन रहते।।
योगी जीवन मुक्त कहावे।
मेरी बुद्धि में यह नहीं आवे।।
गुरु भक्ति मैंने कही, सत्य है यह उपदेश।
इसमें मिथ्या कुछ नहीं, नहीं कहीं लवलेश।।
सुखमय यह उपदेश है, सुन गिरजा मन लाय।
उपकारक और लोकहित, इसे लौकिक कहा न जाय।।
इसे लौकिक जो कहे, उसका है अज्ञान।
वह भव-सागर में गिरे, है मूरख नादान।।
ज्ञानी सर्व की भावना, करता मन के बीच।
करती है वह भावना, शोषण दुःख का कींच।।
इस उपदेश को नर गावे।
अथवा इसे पढ़े पढ़ावे।।
लिखकर इसका जो देते दान।
सुख पाते वह परम सुजान।।
गुरु गीता जो नर जपे-जपावे।
भव बन्धन से मुक्ति पावे।।
गुरु गीता का सर्वोत्तम ज्ञान।
बीज मंत्र इसी को मान।।
भूतादि पशु न कभी सताये।
जो प्राणी नित गीता गाये।।
मल भाव इससे होता नाश।
अन्तर्मन में करे प्रकाश।।
गुरु गीता का जिसको ज्ञान।
वहाँ सदा बसते भगवान।

गुरु भक्ति होती जहाँ, उसको तीर्थ मान।
त्रिदेव और सब देवता, रमते उस स्थान।।
बैठा सोता जागता, आता जाता जोय।
गुरु गीता के पाठ से, कभी निराश न होय।।
गुरु भक्ति से साधक बने, ज्ञानी परमात्म स्वरूप।
गुरु सेवक पड़ता नहीं, कभी दुःखों के कूप।।
पारब्रह्म से जो मिले, साधक अपने आप।
जीवन भर जी करता है, गुरु गीता का जाप।।

गुरु प्रसन्न जब होता प्यारी।
दूर होतीं सब बीमारी।।
जो भी हुए ऋषि मुनि ज्ञानी।
योगीश्वर तपोवर ध्यानी।।
सब गुरु सेवा से तरे।
अन्धकूप में नहीं परे।।
गुरु ब्रह्म का रूप है प्यारी।
गुरु आस्था है पापाहारी।।
गुरु धर्म के रूप ही जानो।
परम तत्व गुरुवर पहिचानो।।
गुरु से भिन्न धर्म नहीं कोई।
जो गुरु देव से बढ़कर होई।।
गुरु बिन ध्यान कभी नहीं होता।
प्राणी घोर नरक में रोता।।
धन्य धन्य है वह महतारी।
गुरु भक्त को जनने वारी।
पिता धन्य गुरु शिष्य के प्यारे।
धन्य भक्त के भ्राता सारे।।
धन्य वंश जिसमें वह जाया।
वंश ही धरणी भूषण कहलाया।।
धन्य जगह जहाँ भक्त का वास।
ऐसा गौरी मेरा विश्वास।।

तन मन इन्द्रिय धन और मान।
मात–पिता गुरुजन सन्मान।।
सब गाथा में सत्य बरवानी।
इसमें संशय नहीं भवानी।।
जन्म कोटि शत के सब दान।
गुरु सेवा से नहीं महान।।
यज्ञ योग और विधि विधान।
गुरु बिन करते नहीं कल्यान।।
गुरु सेवा है तीर्थ महान।
और सब तीर्थ निरर्थक जान।।
धन मद विद्या मान से, गुरु सेवा तजि दीन।
वे नर पामर नीच हैं, अन्ध बुद्धि से हीन।।
सद्गुरु चरण सरोज में, कुंभ तीर्थ का वास।
गूढ़ रहस्य बतला दिया, इस पर कर विश्वास।।
बिन अधिकारी के कभी, कहो न गीता ज्ञान।
गुरु भक्ति दुर्लभ उन्हें, मूरख उनको मान।।
जो जन हैं श्रद्धा से हीन।
अथवा जिनकी बुद्धि मलीन।।
भ्रान्त चित्त जो हों नर नारी।
गुरु गीता के नहीं अधिकारी।।
उन्हें नहीं यह ज्ञान बताओ।
उनसे ऐसा ज्ञान छिपाओ।।
पाखण्डी धूर्त शठ पापी।
भक्ति हीन, झूंठा सन्तापी।
गुरु गीता उनसे नहीं कहनी।
ऐसे घर लक्ष्मी नहीं रहनी।।
ग्रन्थ अविद्या भेदन करते।
कोटि जनम के पाप जो करते।।
लोभी गुरु, धन हरने वारे।
दुःखी शिष्य को करने वारे।।

ऐसे गुरु को सुधारो भवानी।
करूँ प्रणाम जोरि युग पाणि।।
गौरी गुरु कीजिये जान।
पानी सदा पीजिये छान।।
जो गुरु पूज्य शिष्य अधिकारी।
गौरी बन्दना उन्हें हमारी।।
गुरु मंत्र सुमिरूँ मैं मनसे।
कहूँ आप से सत्य वचन से।।
गुरु मंत्र करता उद्धार।
गुरु मंत्र सद्‌गति का द्वार।।
गुरु मंत्र दरिद्र का हरता।
गुरु मंत्र भंडारा भरता।।
गुरु मंत्र शोक सब हरे।
गुरु मंत्र निर्मल सब करे।।
गुरु मंत्र को शीश झुकाऊँ।
गुरु सेवा में तन मन लाऊँ।।

विनती – गुरु गीता के पाठ का, यदि करना गुणगान।
योग साधना से करो, सब अपना कल्यान।।
योग आश्रम में जाकर, योग करो मन लाय।
ब्रह्मचारी जी आपको, देंगे सब समझाय।।
श्री रामलाल योगीश्वर प्रभु, कृपा गुरुवर पर कीन।
उसी कृपा से हो रहे, सब पाप जगत के क्षीन।।
सेवक पर दया करो, दया सिन्धु हो, आप।
भव सागर में भटकता, मेरे दूर करें सन्ताप।।
गुरु चरणों में साष्टांग नमन।
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

● ● ●

मंत्र महामणि विषय ब्याल के, मेंटत कठिन कुअंक भाल के

डॉ. रुद्रदत्त चतुर्वेदी

मनुष्य स्वभावत: सुख की इच्छा रखता है। आध्यात्म जगत की यात्रा स्थूल से सूक्ष्म की ओर बढ़ती है। अत: चाहे वह भौतिक सुख हो या आध्यात्मिक सुख सभी की प्राप्ति के लिए ऋषियों ने पुरुषार्थ के अतिरिक्त आध्यात्मिक उन्नति के लिए मंत्र जाप बताया है। आत्मिक उन्नति के प्रथम चरण ध्यान की साधना के लिए भी मंत्र एक अनिवार्य तत्व है। विभिन्न स्थानों पर उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए भी मंत्र की परिभाषा दी गई है। कुछ विद्वान – ''मननात् रक्षति इति मंत्र:'' (अर्थात् जिसके मनन से रक्षा होती है) बताते हैं तो कुछ विद्वान इसे परामर्श के रूप में परिभाषित करते हैं (अतीत लाभस्य च रक्षणार्थ ... यं मंत्रयते असौ परमो हि मंत्र:)। श्री हनुमान चालीसा में – ''तुम्हरो मंत्र विभीषण माना, लंकेश्वर भये सब जग जाना'' पंक्ति मंत्र के इसी दूसरे अर्थ परामर्श को दर्शाती है।

योग मार्ग में आगे बढ़ने के लिए सद्गुरु द्वारा प्रदत्त मंत्र के अभाव में भी प्रगति अत्यन्त कठिन होती है। कविवर तुलसीदास ने लिखा है :

सद्गुरु ग्यान विराग जोग के।
बिबुध बैद भव भीम रोग के।।

सो भव रोग वैद्य द्वारा शक्तिपात सम्पन्न मंत्र प्रगति पथ को निष्कंटक बनाता है। ध्यान की प्रक्रिया द्वि–मार्गी है : मंत्र जाप और अपने इष्ट के सम्पूर्ण चित्र अथवा चरणों पर केन्द्रीकरण। पाश्चात्य मनोविज्ञान में ध्यान को – 'अटेन्शन इज द कन्सेन्ट्रेशन ऑफ कांशसनैस अपऑन वन आब्जेक्ट' अर्थात् चेतना के किसी वस्तु पर केन्द्रीकरण को ध्यान कहते हैं। यदि सद्गुरु न मिले तो मंत्र छोटा ही चुनना चाहिए ताकि अधिकाधिक जाप और अधिक शक्ति संचय में सहायता मिले।

लगभग एक सदी पूर्व विज्ञान ने भी इस तथ्य की पुष्टि करली थी कि शब्द में शक्ति होती है, उसकी गति 18000 मील प्रति सैकिन्ड होती है और चक्राकार क्रम में उसकी लहरें पुन: मस्तिष्क से गुजरती हैं। हम यह भी जानते हैं कि मस्तिष्क का एक बहुत बड़ा भाग निष्क्रिय रहता है। मंत्र जाप से वह भाग सक्रिय होने लगता है और पराशक्ति का विकास होता है जिससे दूरदर्शन, दूरश्रवण और भविष्य दर्शन की शक्ति प्राप्त होती है। साथ ही परमात्मा से आत्मा का मिलन भी संभव होता है।

यद्यपि अर्थ सहित जाप से सफलता शीघ्र मिलती है परन्तु मंत्र के अर्थ ज्ञान के अभाव में भी निरंतर जाप आत्मोन्नति में सहायक होता है। मंत्र जाप की तीन विधियाँ हैं – जोर जोर से,

हल्की ध्वनि से जिसे अपने कान ही सुन सकें और मानसिक अर्थात् बिना जीभ हिलाये। मंत्र जाप की निरंतरता और समयबद्धता से ध्यान की स्थिति सुदृढ़ होती है जो आगे चलकर समाधि प्राप्त कराती है। मंत्र जाप में रीढ़ की हड्डी को सीधे करके बैठना आवश्यक है। यदि वृद्धावस्था अथवा रुग्णावस्था में यह संभव न हो तो सीधे लेटकर जाप किया जा सकता है। तब पतला तकिया आवश्यक होता है। मेरे गुरुदेव पूज्यपाद चन्द्रमोहन जी कहा करते थे कि प्रारम्भ में मंत्र जाप माला की सहायता से करना चाहिए ताकि मन न भटके। बाद में दीर्घकालीन अभ्यास से मानसिक जाप की स्थिति आती है।

यहाँ यह बात भी आश्वस्तिकारी है कि हम जिस देवता का मंत्र जाप चुनते हैं, थोड़ी सी प्रगति के बाद, वे ऋषि महर्षि जो उस देवता के कृपा पात्र रहे हैं साधक की सहायता करने लगते हैं। हाँ – एक बात की सावधानी रखनी चाहिए कि इस दौरान प्रगति के मार्ग में लौकिक सिद्धियाँ साधक को लुभाकर पथभ्रष्ट करने का प्रयत्न करतीं हैं अतः उनके प्रलोभन से बचा जाय। इस हेतु श्री गुरुदेव का निरंतर सानिध्य और मार्गदर्शन इस सबसे बचाता है। कभी कभी साधक को ऐसी भ्रान्ति भी होती है कि गुरुदेव मेरी प्रगति से ईर्ष्या रखने लगे हैं और साधक गुरुसानिध्य छोड़ देता है। अतः इस भ्रान्ति से सदैव बचना चाहिए क्योंकि अपना लगाया पेड़ सभी को प्रिय होता है।

चूँकि हम पर समाज का ऋण भी है अतः हमारा यह दायित्व भी बनता है कि हम अलौकिक शक्तियों के माध्यम से सुपात्र – दीन–दुखी लोगों का लौकिक और यदि सक्षम हों तो पारलौकिक कल्याण भी करें। यही जीवन की सार्थकता है।

सम्पर्क :1, प्रोफेसर कॉलोनी, गोरखपुर–9

फोन नं: 0551–2200036

●●●

देहधारियों के भोग–विषय, सुख–साधन बादलों में चमकने वाली बिजली की तरह चंचल हैं; मनुष्यों की आयु या उम्र हवा से छिन्न–भिन्न हुए बादलों के जल के समान क्षणस्थायी या नाश्वान हैं और जवानी की उमंग भी स्थिर नहीं है। इसलिए बुद्धिमानो ! धैर्य से चित्त को एकाग्र करके उसे योग साधना में लगाओ।

श्रीमद्भागवत में योग परिचर्चा

– डॉ. विजय सिंह

सभी पुराणों में, सामान्यतया परमात्म तत्व, सृष्टि प्रकरण, साधन प्रकरण एवं लय प्रकरण की चर्चा अवश्य की गयी है। वह अनादि शास्वत तत्व को, निराकार से ब्रह्म, साकार रूप से ईश्वर, भगवान अवतार आदि के अर्थ में समझना चाहिए। श्री भागवत पुराण में उपरोक्त चारों लक्षणों के साथ सांख्य–योग, कर्मयोग, भक्ति योग के साथ तंत्र योग का भी संकोच के साथ विवरण मिलता है। योगी, महायोगी, सिद्धों, योगेश्वरों के उपदेश आख्यान भरे पड़े हैं। युगचक्र, कालचक्र, जगचक्र के प्रणेता भुवन मोहन श्री योगेश्वर कृष्ण चन्द्र के चारु कथामृत के साथ उनके द्वारा उधव को ज्ञानो–पदेश आदि का पठन चित्त में जमें कलिमल का निस्तारण करने वाला है।

बारह स्कन्धों में वर्णित भागवत का कोई भी स्कन्ध योग चर्चा से अछूता नहीं है। श्री सद्गुरु भगवान द्वारा कलि के प्राणियों में जिस प्रकार योग की प्रतिष्ठा किया गया है, वही आज के वर्तमान का सत्य है। भागवत का प्रारम्भ और अन्त में ''सत्यं परम धीमहि'' से किया गया है। श्री सद्गुरु देव अपने शिष्यों को उन नारायण स्वरूप श्री महाप्रभु जी के गुण–कीर्तन, योग सामर्थ्य, शिष्यों के संकट हरण कर्ता आदि विविध आयामों को अपनी वाणी द्वारा मुर्तिमत्ता शक्ति प्रक्षेप से मानस में दृढ़ कर देते रहे हैं। श्रद्धा का बीज बोकर पुनः अष्टांग योग (यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि) के प्रत्यक्ष क्रियान्वयन से उसे बराबर पौष्टिकता, जल, वायु, तेज प्रदान करते रहे। फिर श्रद्धा तरु रूप जब साधक के हृदय में देखते तो अपने शक्तिपात द्वारा उस तरु में अचानक सम्प्रज्ञात समाधि रूपी विचित्र चित्त निरोधक फल उत्पन्न कर देते। साधक अन्तर्जगत में रमने लगता। श्रवण, स्मरण, ध्यान ही हमें योग मार्ग में आरूढ़ करता है।

पुराण साकार ब्रह्म अथवा अवतारों के दिव्य–चरित्र का प्रकाशक होते हुए भी उस निराकार परम ब्रह्म की ओर ले जाने का हेतु है। क्योंकि सत्यं, ज्ञान, अनन्तम् ब्रह्म। सत्य ही परम धर्म है, जिसे धारण किये बिना, उस चरम लक्ष्य की ओर पहुँचना कदापि सम्भव नहीं है।

पुराण की कथायें ज्ञानोपवर्धक, मनोरंजक, कौतुक पूर्ण विवरणों से जहाँ एक ओर भरा पड़ी है वहीं, योग, ज्ञान, भक्ति को प्रशस्त करने वाले गूढ़ उपदेशों द्वारा साधक के अन्तर दृष्टि को खोलने में सहायक सिद्ध होता है।

(18 हजार) हजारों श्लोकों तमाम् अध्यायों में जो कुछ कहा गया है उसका निचोड़ चार–श्लोकों में निम्न प्रकार से वर्णित है –

अहमेवासमेवाग्रे नान्यद् यत् सदसत् परम्।
पश्चादहं यदेतच्च योऽवशिष्येत सोऽस्म्यहम्।।1।।

ऋतेऽर्थं यत् प्रतीयेत न प्रतीयेत चात्मनि।
तद्विद्यादात्मनो मायां यथाऽऽभासो यथा तमः।।2।।

यथा महान्ति भूतानि भूतेषूच्चावचेष्वनु।
प्रविष्टान्यप्रविष्टानि तथा तेषु न तेष्वहम्।।3।।

एतावदेव जिज्ञास्यं तत्वजिज्ञासुनाऽऽत्मनः।
अन्वयव्यतिरेकाभ्यां यत् स्यात् सर्वत्र सर्वदा।।4।।

भावार्थ –

सृष्टि के पूर्व एकमेव मैं–ही–मैं था। मेरे अतिरिक्त न स्थूल था न सूक्ष्म और न तो दोनों का कारण अज्ञान। जहाँ यह सृष्टि नहीं है, वहाँ भी मैं हूँ और इस सृष्टि के रूप में जो कुछ प्रतीत हो रहा है, वह भी मैं हूँ, इसके अलावा जो कुछ शेष है, वह भी मैं ही हूँ।

वास्तविक रूप से न होने पर भी जो कुछ अनिर्वचनीय वस्तु मेरे अतिरिक्त मुझ परमात्मा में दो चन्द्रमाओं (नेत्र विकार) की तरह मिथ्या ही प्रतीत हो रही है, अथवा विद्यमान होने पर भी आकाश–मण्डल के नक्षत्रों में राहु की भांति जो मेरी प्रतीति नहीं होती, इसे माया समझना चाहिए।

प्राणियों के पंचभूतरचित छोटे–बड़े शरीरों में आकाशादि पंचमहाभूत उन शरीरों के कार्यरूप से निर्मित होने के कारण प्रवेश करते भी हैं और पहले से ही उन स्थानों और रूपों में कारणरूप से विद्यमान होने के कारण प्रवेश नहीं भी करते। इसी प्रकार प्राणियों के शरीर की दृष्टि से मैं उनमें आत्मा के रूप में प्रवेश किये हुए हूँ और आत्मदृष्टि से अपने अतिरिक्त और कुछ न होने के कारण उनमें प्रविष्ट नहीं भी हूँ।

यह ब्रह्म नहीं, यह ब्रह्म नहीं (नास्तिवाद) निषेध द्वारा और यह ब्रह्म है, यह ब्रह्म है इस अन्वय की पद्धति से यह सिद्ध होता है कि सर्वातीत एवं सर्वस्वरूप भगवान ही सर्वदा, सर्वत्र स्थित हैं वे ही परम तत्व हैं। अतः जो आत्मा अथवा परमात्मा को तत्वतः जानता है वही सर्व परम सत्य को जानता है।

प्रथम महातम्य एव प्रथम स्कन्ध

इस स्कन्ध के उन्नीस अध्यायों में लगभग 35 श्लोकों में योग की महत्ता बताया गया है। संक्षेप में विवरण देते हुए किसी–किसी कथानक या उपदेश को लेख में समाहित करने की चेष्टा की गयी है। शौनक ऋषि – महात्मा सूत जी से प्रश्न करते हुए पूछते हैं घोर कलिकाल में मनुष्य प्रायः आसुरी स्वभाव के हो गये हैं। क्लेशों से आक्रांत इनको दैवी शक्ति सम्पन्न बनाने का सर्वश्रेष्ठ उपाय क्या है?

चिन्तामणिर्लोक सुखं सुरद्रुः स्वर्ग सम्पदम्।
प्रयच्छति गुरुः प्रीतो बैकुण्ठं योगिदुर्लभम्।।8।। स्क.1, अ.1

सूत जी ने कहा – मान्यवरों। चिन्तामणि केवल लौकिक सुख दे सकता है और कल्प वृक्ष स्वर्गीय सम्पत्ति दे सकता है परन्तु सद्गुरु प्रसन्न होकर शिष्य को भगवान का योगिदुर्लभ नित्य

बैकुण्ठधाम दे देते हैं।

मंत्र योग में मंत्र स्फुरणा की एक स्थिति है जब साधक को मन में उठने वाली कामनाओं की पूर्ति तत्क्षण होने लगता है। "यं यं चिन्तयते कामम् तं तं प्राप्नोति निश्चयं"। लेकिन सद्गुरु प्रसन्नता तो आत्मोपलब्धि साधक को कराने वाला होता है। प्रथम अध्याय के चौवनवें श्लोक में युवती भक्ति, नारद जी से अपने वैराग्य ज्ञान रूपी पुत्रों को पुनः यौवन प्राप्त कराने का उपाय पूछती हुई नारद जी को परम बुद्धिमान योग निधि कहकर सम्बोधित किया है –

अतः शोचामि चात्मानं विस्मयाविष्टमानसा।

वद योगनिधे धीमन् कारणं चाल किं भवेत्।। 54।।

कलियुग के प्रभाव से ज्ञान एवं वैराग्य वृद्ध जीर्ण–शीर्ण मरणासन्नता को प्राप्त हो रहे हैं। उनको पुनर्नवीन बनाने हेतु ही भागवत का निरूपण भगवान वेदव्यास जी ने किया है। अतः भक्तियोग का आश्रय ही ज्ञानोपलब्धि तथा वैराग्य को पुष्ट करने वाला है।

संत–सिद्ध सद्गुरुओं का जीवन में समागम से बढ़कर कोई सौभाग्य नहीं है। उनका दर्शन ही समस्त सिद्धियों का परम कारण है। "साधूनां दर्शनं लोके सर्वसिद्धिकरं परम्।"

महात्म्य के दूसरे अध्याय में श्री नारद जी ने वेद, ऋचायें, स्मृतियों के अवगाहन से ज्ञान एवं वैराग्य के वृद्धावस्था को दूर करना चाहा परन्तु वे सक्षम सिद्ध नहीं हुए। यहाँ नारद जी को योगी शब्द से अभिहित किया गया है –

योगिना नारदेनापि स्वयं न ज्ञायते तु यत्।

तत्कथं शक्यते वक्तुमितरैरिह मानुषैः।। 41।। स्म.1, अ2

योगी नारद जी को भी वैराग्य एवं ज्ञान के अकस्मात् वृद्धावस्था का कारण जब ज्ञात न हो सका तो दूसरे लोग क्या बता सकते हैं?

इसी चिन्ता में डूबे नारद जी बद्रीनारायण पहुँचे। तप करके उपरोक्त समस्या का निदान खोजूंगा। तभी वहाँ सनकादि मुनिश्वर प्रकट हुए। उनको देख कर ज्ञान, वैराग्य के वृद्धत्व का कारण जानने हेतु श्री नारद जी ने पूछा – मेरा, सौभाग्य जो आप सभी बड़े योगी, बुद्धिमानों का मुझे दर्शन हुआ। कृपया शीघ्र ही ज्ञान, वैराग्य को नव यौवन प्रदान हो उसका उपाय बताइये।

भवन्तो योगिनः सर्वे बुद्धिमन्तो बहुश्रुताः।

पंचहायनसंयुक्ताः पूर्वेषामपि पूर्वजाः।। 46।। स्क.1अ.2

योगी सनकादि ने भागवत वर्णित भक्तियोग को ही कलि में उद्धार का उपाय बताया और कहा भगवत्कथा कथामृत, व सतसंग से ही पुण्य–पुंज का उदय होने पर मनुष्य के अन्तःकरण में अज्ञान जनित मोहान्धकार का नाश करके विवेक उदय होने पर ही नूतन वैराग्य जनित यथार्थ ज्ञान का बोध होता है।

अतः हमें निरन्तर सद्गुरु–कथामृत, महाप्रभु के प्रेरक प्रसंग और निरन्तर हो रहे सद्गुरु करुणा का स्मरण करते हुए परम सत्य को पाने हेतु प्रयास रत रहना चाहिए।

अखिल ब्रह्माण्ड नायक योगेश्वर प्रभु

श्री रामलाल जी महाराज का काय-निर्माण

– ''कुँवर'' अनिल कुमार सिंह, एड., कछवा, मीरजापुर

जिस समय योगी अपने संयम के आधार पर सूक्ष्म तत्वों को जानने की इच्छा करता है, उस समय परमाणु पर्यन्त योगी का चित्त संयम से पहुँच जाता है और जिस समय स्थूल तत्व में संयम करता हो तो आकाश आदि पर जय करके मूल प्रकृति पर्यन्त वशीकार प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार से योगी का चित्त बिना किसी रुकावट के संकल्प मात्र से सूक्ष्म और महान से महान में स्थिति को पा जाता है तो उसकी वशीकार संज्ञा हो जाती है उसको फिर अभ्यास करने की आवश्यकता नहीं रहती। संकल्प मात्र से जहाँ भी संयम करता है, वहीं ही उसका अधिकार हो जाया करता है। इस प्रकार संयम के आधार पर वह योगी पंच महाभूतों के ग्रहण, सूक्ष्म आदि रूपों पर अधिकार पा जाया करते हैं। वह भूतजयी योगी अपने शरीर में जैसा भी परिणामान्तर करना चाहते हैं वैसा ही हुआ करता है।

अखिल ब्रह्माण्ड नायक महायोगी प्रभु श्री रामलाल जी महाराज के चरणाविन्द के विषय में उनके चरणारविन्दानुरागी योगियों, साधुओं, महात्माओं आदि ने पूरा अन्वेषण कर इस बात को भली भांति प्रकार से जान लिया है कि आनन्द कन्द श्री महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज तत्व विजयी अनादि काल श्रेणी वाले महासिद्धों में से एक 'महासिद्ध' हैं। उन्होंने अपने में संस्कार रखने वाले अनेकों प्राणियों के संस्कार निवृत्ति के लिए कितने ही स्थानों पर निर्माण–तन धारण किये।

एक बार महायोगेश्वर प्रभु श्री रामलाल जी महाराज के सवांई ग्राम में निवास काल की एक घटना है जो कि सवांई ग्राम के लोगों ने उस समय स्वयं आँखों से देखी थी। श्री महाप्रभु जी सवांई ग्राम में निवास कर रहे थे तब श्री महाप्रभु जी आश्रम में रहते हुए बच्चों को खेल खिलाया करते थे। एक दिन अकस्मात एक घटना घटी जिससे यह पूर्ण रूपेण प्रमाणित हो जाता है कि श्री प्रभुजी एक साथ तीन जगह निर्माणित शरीर से प्रगट हुए।

गढ़मुक्तेश्वर में ''योगेश्वर श्री प्रभुजी''

एक दिन सवांई ग्राम के बहुत से व्यक्ति गंगा स्नानार्थ गढ़मुक्तेश्वर गए। गंगा स्नानार्थ जाने वाले लोगों ने श्री प्रभुजी से यह प्रार्थना की कि प्रभो! आप भी हमारे साथ गंगा स्नान को चलें, किन्तु श्री प्रभुजी ने कुछ अनमने भाव से कहा कि भाई हम जाकर क्या करेंगे, तुम सब जाकर गंगा स्नान कर आओ। मन से हर समय तुम्हारे साथ हैं। गाँव के लोग मान गए और गढ़मुक्तेश्वर गंगा स्नान को चले गये। वहाँ पहुँचने पर जब वे लोग गंगा स्नान के लिए घाट पर गये तो उन लोगों ने देखा कि श्री महाप्रभुजी भी गंगा स्नान के लिए आ रहे हैं। लोगों ने पूछा कि प्रभो! आप आ गये। तो श्री प्रभुजी ने कहा कि तुम सब लोगों की भावना थी, सो हम आ गये। तो

लोगों ने कहा कि प्रभो! आपने यह बहुत ही अच्छा किया जो आप आ गए। हम लोगों की तीव्र भावना थी कि हम सब इस पवित्र पर्व पर आप के साथ हों। आपके बिना तो स्नान को बिल्कुल बेकार समझते थे। इस प्रकार वार्तालाप करते हुए श्री महाप्रभुजी वहाँ कुछ देर एवं कुछ दूर उनके साथ रहे एवं उसके बाद उन लोगों से कहा कि भई! तुम लोग चलो अब हम आ जायेंगे।

अलीगढ़ में भक्त रक्षाहित – निर्माण काय

ठीक उसी दिन जिस दिन गढ़मुक्तेश्वर में यह घटना घटी, अलीगढ़ में इसी प्रकार की घटना घटी। ठाकुर कर्णसिंह श्री महाप्रभुजी के अनन्य भक्तों में से एक थे। वह उन्हीं के चिंतन प्रतिक्षण लीन रहा करते थे। अकस्मात चलते–चलते चिंतनशील होने से उनका पैर घिसटा और गहरे गड्ढे में गिरने की स्थिति आ गई। ठा. कर्ण सिंह ने देखा पीछे श्री महाप्रभुजी खड़े हैं और उनके कन्धों को पकड़कर कह रहे हैं कि अरे! कर्ण सिंह होश संभाल कर चल नीचे कितना गहरा गड्ढा है। अभी तू इसमें गिर जाता तो प्राण रक्षा कठिन हो जाती। यह कहकर वे कुछ दूर तक उसके साथ चले और उसके बाद अन्तर्ध्यान हो गये। उधर सवाई आश्रम में जैसे के तैसे विराजमान रहे। उधर गढ़मुक्तेश्वर गये गंगा स्नानार्थी लोग एवं कर्ण सिंह दूसरी तरफ से जब सवाई आश्रम पहुँचे तो वहाँ पर आनन्दकन्द योगेश्वर श्री प्रभु रामलाल जी महाराज पहले से ही विराजमान थे। इन लोगों ने आकर के कहा कि प्रभो! इतनी जल्दी आकर के आप हम लोगों से पहले कैसे आ गये? तो श्री महाप्रभुजी ने कहा कि हम तो यहाँ से कहीं गये ही नहीं, तुम्हें कोई दूसरा महात्मा मिला होगा। सभी को बहुत बड़ा आश्चर्य हुआ और सभी लोग समझ गये कि श्री महाप्रभु जी ने यह कार्य हम सबके हितार्थ, नव शरीर बदल करके किया।

मद्रास प्रान्त के प्रमुख शहर 'मछलीपट्टम में काय निर्माण

मछलीपट्टम शहर से थोड़ी दूर पर गोदावरी नदी के उत्तरी तट पर सघन छायायुक्त वृक्ष खड़ा था। उसके नीचे वनीय स्थान में भिन्न–भिन्न स्थानों से साधु लोग आ करके अपना अभ्यास किया करते थे। उन सब में एक साधक विषयोग का अभ्यासी था वह संखिये की एक ढेली पर सलाई की तीली से रेखा खींच कर चाट–चाटकर अपना अभ्यास बढ़ा रहे थे। परम करुणालय आनन्द कन्द श्री प्रभुजी वहाँ काय–निर्माण से प्रगट होकर उस साधक को आश्वासन देते हुए कहा कि लाओ तुम्हारे इस अभ्यास को हम बढ़वा दें। यह कहकर श्री प्रभुजी ने संखिये की एक बड़ी ढेली उठाई और उसे दे दी और कहा खा ले। साधु स्वरूप देखकर उस महात्मा ने विश्वास कर खाली और उतनी बड़ी ढेली पच भी गई। उस विषयोगी को बड़ा आश्चर्य हुआ कि यह ''महापुरुष कौन है' और कहाँ से आते हैं। श्री प्रभुजी ने उसे आज्ञा दी कि हम सप्ताह में एक दिन आया करूंगा और तुम्हारा विषयोग का अभ्यास पूरा करा दूंगा। अपनी कथनानुसार श्री प्रभुजी प्रति सप्ताह गोदावरी के तट पर आते एवं उसे दर्शन देते एवं तरह–तरह के चमत्कार होते रहे एवं उसका समाधिका अभ्यास उत्तरोत्तर बढ़ता गया।

एक दिन उसने श्री प्रभुजी से हटपूर्वक पूछा कि प्रभो! आपकी कृपा से मुझे अद्भुत

सफलता प्राप्त होती जा रही है। कृपा करके आप अपना परिचय कराइये कि आप कौन हैं? कहां से आते हैं? परन्तु श्री प्रभुजी ने बार–बार समझाया कि तुम्हें हमारे परिचय का क्या लाभ? हम साधु हैं रमते राम हैं आज यहां तो कल वहां। परन्तु विषयोगी के बारम्बार हठ के परिणामस्वरूप श्री प्रभुजी ने अपना परिचय दे दिया, कहा कि हमारा नाम 'रामयोगी' है जन्म भूमि पंजाब है। हमारे बहुत से शिष्य श्री मुलखराज जी महाराज, ब्र. गोपालानन्द जी, परमयोगी गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज एवं नृसिंह आदि हैं। तुम आज से छः महीने बाद रायमहेन्द्रगढ़ शहर में मेरा बच्चा नृसिंह मूर्ति का योग प्रचार है वह तुम्हें मिलेगा आगे की क्रिया एवं शिक्षा, वह दे देगा। ठीक छः महीने बाद वह विषयोगी श्री नृसिंह मूर्ति महाराज जी से मिला, परिचय देकर आगे का अभ्यास प्राप्त कर विषयोगी बना। यह था श्री प्रभु रामलाल जी महाराज का काय निर्माण।

पंडित यशवन्त जी को काय–निर्माण से दर्शन

अमृतसर में पंडित यशवन्त शर्मा दुर्ग्यान मन्दिर के सामने लोहे के फाटक से बाहर भाई धनवन्ती की धर्मशाला के सामने धूप अगरबत्ती की दुकान करते थे। वे श्री प्रभुजी की बाल्यावस्था से ही सेवा करते थे। आयु उनकी छोटी थी। वे श्री प्रभुजी से प्रार्थना करते थे कि श्री प्रभुजी आप हमारे घर पर चलें। श्री प्रभुजी बिलकुल साधारणभाव से कहते थे कि बेटा शान्तरह कभी चलेंगे। एक दिन अचानक इस बालक ने बहुत हठ किया, तो आनन्द कन्द श्री प्रभुजी ने कहा – अच्छा तू चल, मकान खोल हम आते हैं। बालक यशवन्त ने श्री प्रभुजी की आज्ञा को मानकर तांगा मंगवा लिया और श्री प्रभुजी को बैठाकर आने के लिए छोड़कर स्वयं थोड़ी पहले घर पहुँच कर दरवाजा खोला तो देखा कि श्री प्रभुजी अन्दर पलंग पर बैठे हैं और इस दृश्य को देखकर आश्चर्य में पड़ गया कि श्री प्रभुजी पलंग पर पहले से ही विराजमान हैं हाथ जोड़ कर यह प्रार्थना की कि प्रभुजी! आप मुझसे पहले यहाँ कैसे पहुँच गए और मकान में ताला बन्द था आप अन्दर कैसे प्रवेश किए, ताला तो मैंने स्वयं अभी खोला श्री प्रभुजी मुस्कराने लगे। बेटा हम तो तुम्हारे साथ ही तो आये हैं। तदुपरान्त पीछे मुड़कर देखा तो जो तांगा वह श्री प्रभुजी के लिए छोड़कर आया था, उसमें श्री प्रभुजी बैठे चले आ रहे हैं। वह और भी बड़ी आश्चर्य, में पड़ गया कि श्री प्रभुजी इधर पलंग पर बैठे हैं एवं इधर तांगे में बैठे चले आ रहे हैं। किस स्वरूप को सत्य माने। श्री प्रभुजी के स्वरूप से ही प्रार्थना की कि प्रभुजी तांगे में भी आप हैं एवं पलंग पर भी आप ही विराजमान हैं आपके किस स्वरूप को सत्य मानें। आनन्द कन्द परम घन श्री प्रभुजी हँस पड़े एवं हँसकर कहने लगे – बेटा! हम तो तुम्हारे साथ ही हैं और कहीं थोड़े ही है। यह कहकर बालक यशवन्त को लेकर मुस्कुराकर साथ अपने स्थान को चल पड़े। यह थी श्री प्रभुजी की काय –निर्माण।

श्री नारायणदास जी को काय–निर्माण से खेचरी उपदेश

पं. नारायण दास जी अमृतसर के रहने वाले थे। उन्हें श्री प्रभुजी ने खेचरी मुद्रा का अभ्यास करने की आज्ञा दी। वह शनैः शनैः दोहन,चालन, छेदन के द्वारा खेचरी का अभ्यास

करते थे। किन्तु काफी प्रयास के बाद भी सफलता नहीं मिली। पं. नारायणदास जी स्वाध्याय शील व्यक्ति थे। घटना इसी प्रकार हुई, नारायणदास खेचरी के लिए परेशान थे और मन में बहुत अधिक निराशा थी। वह सोचने लगे कि यदि खेचरत्व लाभ नहीं होता तो मनुष्य शरीर को धारण करने के क्या लाभ। इसी व्याकुलता में क्या देखते हैं कि आनन्दकन्द श्री प्रभुजी सामने से आते हैं और कहते हैं बेटा ! नारायण दास, तुम निराश क्यों होते हो तुझे एक मंत्र देता हूँ जिसके जपने से खेचरी सिद्ध हो जायेगी, श्री प्रभुजी ने उसके पास रहकर मंत्र जपाया एवं स्वयं जीभ को पकड़कर खींच दिया एवं खेचरी सिद्ध करा दी। उसी दिन से पं. नारायण दास जी का समाधि लगने लगी। यह श्री प्रभुजी ने काय–निर्माण से प्रगट होकर सिद्धि प्रदान की।

इस तरह परम आराध्य घन कृपा निकेतन योगेश्वर प्रभु श्री रामलाल जी महाराज का काय–निर्माण से अनेकों जगह अनेकों कार्य निर्माण से अन्यान्य लोगों का उद्धार किया एवं अभी करते चले आ रहे हैं। अभी कुछ वर्ष पहले हमारे प्रातः स्मरणीय परम आनन्दकन्द श्री गुरुदेव योग योगेश्वर श्री चन्द्रमोहन जी महाराज का नेपाल धाम की यात्रा की। परम आदरणीय श्री गुरुदेव महाराज जी पशुपति नाथ के साथ धर्मशाला में ठहरे हुए थे। वहाँ अकस्मात् एक साधु आया और श्री गुरुदेव भगवान से 'पुष्प प्रसाद' की मांग की। तो श्री महाराज जी ने पूछा कि तुम कहाँ से एवं किसके द्वारा भेजे गए हो। तो उस साधु ने जवाब दिया कि आप जिस की पूजा करते हैं उन्होंने ने ही हमें यहां भेजा है मुझे दरभंगा के जंगलों में प्रभु रामलाल जी महाराज का दर्शन मिला एवं उन्हीं की आज्ञा हुई कि अमुक समय में अमुक जगह पर जाओ वहां मेरे 'परम प्रिय श्री चन्द्रमोहन जी' का कार्यक्रम है, उसी से तुम प्रसाद ग्रहण करो। वह साधु प्रसाद लेकर चला गया और लोगों को उसका दर्शन नहीं मिला। यह क्या है? परम आनन्दकन्द प्रभु श्री रामलाल जी महाराज का काय–निर्माण।

इस प्रकार परम कल्याणधन श्री प्रभुजी कब कहाँ एवं कैसे कितना शरीर धारण करते हैं यह सब कथन से बाहर है उन्हीं के ''जन्म दिन विशेष' पर इसी पंक्ति के साथ कोटिशः नमन।

अमृतसर प्रकटे प्रभु रामलाल धरि नाम।
ऐसे प्रभुवर धन्य हैं कलि में केवल राम।।
योगाश्रम के बीच में स्थिर है प्रतिमाकार।
कर गए अपने स्थान पर गुरु चन्द्रमोहन सरदार।।
प्रभु रामलाल गुरु चन्द्रमोहन परम सुमरहु आठों याम।
जिनके चरणों पर करूं दोऊ कर जोड़ प्रणाम।।

●●●

संयम द्वारा प्रातिभज्ञान तथा सिद्धियाँ

– प्रो. ऋषिराम शर्मा

(गतांक से आगे)

''परिणामत्रयसंयमात् अतीतानागतज्ञानम्।।''

अर्थात् चित्त की निरोधावस्था में ध्येयरूप धर्म के तीन परिणामों यानि धर्मपरिणाम, लक्षणपरिणाम तथा अवस्थापरिणाम में संयम करने से ध्येय प्रत्यय के अतीत तथा भावी स्वरूप का ज्ञान हो जाता है। इससे किसी भी ध्येय का भूत, भविष्य तथा वर्तमान ज्ञात हो सकता है।

''संस्कारसाक्षात्करणात् पूर्वजातिज्ञानम्''

अर्थात् हमारा चित्त पूर्वजन्मों के कर्मसंस्कारों का इन्टरनेट जैसा कोष है। इसीलिए चित्त को धर्मी तथा संस्कारों को धर्म कहा गया है, तथा –

''शान्तोदिताव्यपदेश्यधर्मानुपाती धर्मी''

यानि चित्तरूपी धर्मी में भूत, भविष्य तथा वर्तमान इन तीनों अवस्थाओं के संस्कार चित्तधर्म के रूप में सदैव अनुगत रहते हैं। जब योगी संयम के द्वारा किसी भी जन्म के संस्कारों को अपना ध्येय बनाता है तब चित्त उस ध्येय की उस अवस्था के संस्कारों से प्रकाशित हो जाता है। इस प्रकार उसे किसी भी पूर्व जन्म का पूर्ण ज्ञान हो जाता है।

''प्रत्ययस्य परचित्तज्ञानम्''

अर्थात् संकल्पवृत्ति का नाम प्रत्यय है। जब योगी किसी दूसरे प्राणी के चित्त को अपना प्रत्यय बनाकर उसमें संयम करता है तब उसका चित्त उस प्रत्यय से प्रकाशित हो जाता है। इस प्रकार उस प्राणी के चित्त में जो भी वृत्तिधर्म होगा, योगी को उसका ज्ञान हो जायेगा।

''कायरूपसंयमात् तद्ग्राह्यशक्तिस्तम्भे चक्षुः प्रकाशासंप्रयोगे अन्तर्धानम्''

अर्थात् जब योगी अपने स्थूल शरीर के रूप में संयम करता है और अपने संकल्प से शरीर की ग्राह्यशक्ति का स्तम्भन कर लेता है तब दूसरे प्राणियों के नेत्रों से आने वाले प्रकाश का उसके शरीर से सम्बन्ध नहीं हो पाता। इस प्रकार कोई भी दूसरा प्राणी उसको नहीं देख सकता, इसी को अन्तर्धानसिद्धि कहा जाता है।

'सोपक्रमं निरुपक्रमं च कर्म तत्संयमात् अपरान्तज्ञानं अरिष्टेभ्यो वा'

अर्थात् मनुष्य शरीर की आयु तथा भोग प्रारब्ध कर्मों पर निर्भर होते हैं। वर्तमान में फल देने वाले कर्म उपक्रमसहित तथा इसी जन्म में भविष्य में फल देने वाले कर्म उपक्रमरहित कहलाते हैं। जब योगी इन प्रारब्धकर्मों में संयम करके इनका ज्ञान प्राप्त कर लेता है तब उसे अपनी मृत्यु के समय का ज्ञान हो जाता है।

''बलेषु हस्तिबलादीनि''

अर्थात् किसी भी प्राणी के बल में संयम करने से उस प्राणी जैसा बल प्राप्त हो जाता है।

प्रवृत्त्यालोकन्यासात् सूक्ष्मव्यवहितविप्रकृष्टज्ञानम्।।

अर्थात् संसार के तीन प्रकार के पदार्थ इन्द्रियों द्वारा प्रत्यक्षज्ञान का विषय नहीं होते। प्रथम वह जो अत्यन्त सूक्ष्म हैं, द्वितीय वह जो आवरण के कारण गुप्त हैं और तृतीय वह जो दृष्टि की पहुँच से दूर हैं। इन पदार्थों का भी पूर्ण ज्ञान योगी को प्रज्ञालोक के द्वारा सम्भव हो जाता है, क्योंकि संयम सिद्ध होने पर उसे दिव्य दृष्टि प्राप्त हो जाती है जिसे प्रज्ञालोक कहा जाता है।

''भुवनज्ञानं सूर्ये संयमात्''

अर्थात् पुराणों में भूलोक की भांति चौदह भुवनों का वर्णन मिलता है। योगी सूर्य में संयम करके इन सभी चौदह लोकों का पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर सकता है। इसीलिए पुराणों का कथन है कि –

इच्छारूपो हि योगीन्द्रः स्वतन्त्रः अजरः अमरः।
क्रीडति त्रिषु लोकेषु यदच्छया यत्र कुत्रचित्।।

अर्थात् योगी इच्छारूप होता है, मायामुक्त, पूर्ण स्वतन्त्र, शरीर की अवस्थाओं से मुक्त तथा अमृतस्वरूप होता है। वह संकल्पमात्र से किसी भी लोक में क्रीड़ा तथा रमण कर सकता है।

''नाभिचक्रे कायव्यूहज्ञानम्''

अर्थात् नाभि में स्थित नाभिचक्र में शरीर की समस्त नाड़ियाँ गुँथी हुई हैं। इस चक्र में संयम करने से शरीर की सम्पूर्ण रचना, शरीर में व्याप्त नाड़ियाँ, धातु तथा रसायनिक पदार्थों की स्थिति का योगी को सम्पूर्ण ज्ञान हो जाता है।

''कण्ठकूपे क्षुत्पिपासानिवृत्तिः।।''

अर्थात् जिह्वा के नीचे जो तन्तु है उसके नीचे कण्ठकूप है। इस कण्ठकूप में संयम करने से योगी की भूख तथा प्यास की बाधा मिट जाती है।

प्रातिभात् वा सर्वम्

ततः प्रातिभश्रावणवेदनादर्शस्वादर्वाता जायन्ते।।

अर्थात् संयम की साधना करते हुए जब योगी को दिव्यदृष्टि प्राप्त हो जाती है तब वह संयम के बिना भी संकल्पमात्र से समस्त ज्ञान प्राप्त कर लेता है। उसकी सभी ज्ञानेन्द्रियाँ दिव्य हो जाती हैं। मन तथा बुद्धि में अलौकिक शक्ति आ जाती है जिसे महाविदेहा वृत्ति कहते हैं। इससे अज्ञान का आवरण नष्ट हो जाता है और योगी का मन तथा बुद्धि शरीरबन्धन से मुक्त होकर सर्वव्यापक होकर कार्य करने लगते हैं।

स्थूलस्वरूपसूक्ष्मान्वयार्थवत्त्वसंयमात् भूतजयः।।

ततोऽणिमादिप्रादुर्भावः कायसम्पद्धर्मानभिघातश्च।।

अर्थात् पंचभूतों की पाँच अवस्थायें होती हैं। वह है –

(1) **स्थूलावस्था** : जिस रूप में हमारी इन्द्रियाँ पंचभूत यानि आकाश, वायु, अग्नि, जल तथा पृथ्वी का प्रत्यक्ष में अनुभव करती है। ज्ञानेन्द्रियाँ इनके विषय शब्द, स्पर्श, जल का रस, अग्नि का रूप तथा पृथ्वी का गन्ध के प्रत्यक्ष अनुभव करती हैं।

(2) **स्वरूपावस्था** :– भूतों के लक्षण, जैसे पृथ्वी का मूर्तिमान, जल का गीलापन, अग्नि की ऊष्णता तथा प्रकाश, वायु की गति तथा कम्पन, तथा आकाश का अवकाश, यह भूतों की स्वरूपावस्था हैं।

(3) **सूक्ष्मावस्था** :– यह भूतों की कारण अवस्था है। इनको तन्मात्रा कहा जाता है। जैसे पृथ्वी की गन्धतन्मात्रा, जल की रसतन्मात्रा, अग्नि की रूपतन्मात्रा, वायु की स्पर्शतन्मात्रा तथा आकाश की शब्दतन्मात्रा, यह भूतों की सूक्ष्मावस्था कही जाती हैं।

(4) **अन्वयावस्था** :– स्थूल तथा सूक्ष्म अवस्थाओं की रचना भी गुणों का क्रमपरिणाम है। अतः गुण सभी भूतों में मूलकारण रूप में विद्यमान रहते हैं। इनमें सतोगुण के प्रभाव से प्रकाश, रजोगुण के प्रभाव से क्रिया तथा तमोगुण के प्रभाव से इनकी स्थिति की अनुभूतियाँ होती हैं। यह अन्वयावस्था है।

(5) **अर्थवत्त्वावस्था** :– यह पंचभूतों वाला दृश्यजगत परमात्मा की मायाशक्ति ने प्राणियों के भोग तथा अपवर्ग के प्रयोजन से तैयार किया है। यह इनकी अर्थवत्त्व–अवस्था है।

जब योगी पंचभूतों की उपरोक्त पाँचों अवस्थाओं में संयम करके इनका साक्षात्कार कर लेता है तब उसको भूतजय सिद्धि की प्राप्ति होती है। इसके परिणामस्वरूप योगी को आठ विशिष्ट सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं। वह हैं –

(1) **अणिमा सिद्धि** :– इस सिद्धि के द्वारा योगी कोई भी तथा कैसा भी सूक्ष्मरूप ग्रहण कर सकता है। पुनः अपने मूलरूप को भी ग्रहण कर सकता है। यह क्रिया संकल्पमात्र से सम्पन्न होती है।

(2) **लघिमा सिद्धि** :– इस सिद्धि से योगी अपने संकल्पमात्र से अपने शरीर को जितना चाहे उतना हल्का बनाकर आकाशगमनादि कार्य कर सकता है। उसके शरीर को जल, पंक तथा कन्टकादि कोई भी बाधा नहीं पहुँचा सकते। वह कहीं भी इच्छानुसार बाधा रहित गमन करता है।

(3) **महिमा सिद्धि** :– इस सिद्धि से योगी अपने भौतिक शरीर को इच्छानुसार चाहें जितना बड़ा या छोटा कर सकता है। जैसा कि हनुमान जी ने सुरसा के समक्ष किया था।

(4) **गरिमा सिद्धि** :– इस सिद्धि से योगी अपने शरीर को इच्छानुसार भारी कर सकता है। जैसा कि अंगद ने रावण की सभा में तथा हनुमान जी ने भीम का अहंकार तोड़ने के

लिए अपनी पूँछ को भारी किया था।

(5) प्राप्ति सिद्धि :– इस सिद्धि से योगी किसी भी दूरस्थ या गुप्त भौतिक पदार्थ को संकल्पमात्र से प्राप्त कर सकता है।

(6) प्राकाम्य सिद्धि :– इस सिद्धि से योगी इच्छानुसार भोग तथा ऐश्वर्य प्राप्त कर सकता है। जैसा कि भारद्वाज मुनि ने भरत का सपरिवार तथा ससैना स्वागत करने के लिए किया था तथा सीता जी ने अपनी बारात के स्वागत में किया था।

(7) वशित्व सिद्धि :– पाँचों भूतों तथा तज्जन्य पदार्थों पर योगी का वशीकार हो जाना वशित्व सिद्धि है।

(8) ईशित्व सिद्धि :– इस सिद्धि से योगी में ईश्वर जैसा ऐश्वर्य आ जाता है। वह जिस पदार्थ की रचना करना चाहेगा, वह पदार्थ इच्छामात्र से सृजित हो जाता है। इसी सिद्धि का प्रयोग कर महर्षि वाल्मीकि जी ने सीता जी के द्वितीय पुत्र कुश का सृजन किया था। महावतार बाबा जी ने रानीखेत के पर्वत पर श्यामाचरण लहरी के लिए सोना तथा हीरों से जड़ित महल का निर्माण किया था।

अब अत्यन्त सूक्ष्म तत्वों पर अधिकार सम्बन्धी सिद्धियों का संकेत करेंगे।

''ग्रहणस्वरूपास्मितान्वयार्थवत्त्वसंयमात् इन्द्रियजयः''

''ततो मनोजवित्वं विकरणभावः प्रधानजयश्च''

''सत्वपुरुषान्यताख्यातिमात्रस्य सर्वभावाधिष्ठातृत्वं सर्वज्ञातृत्वं च''

अर्थात् प्रकृति में अहंकार से उत्पन्न बुद्धि, मन तथा इन्द्रियों की भी पाँच सूक्ष्म अवस्थायें होती हैं, वह हैं ग्रहण, स्वरूप, अस्मिता, अन्वय तथा अर्थवत्व अवस्थायें। यह अवस्थायें भी पंचभूतों की वर्णित अवस्थाओं के समान हैं। इन सभी अवस्थाओं में संयम करके योगी इन प्रकृति के सूक्ष्म तत्वों पर भी विजय प्राप्त कर लेता है। इसके परिणामस्वरूप योगी को तीन अत्यन्त विशिष्ट सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। वह हैं कि –

(1) मनोजवित्व सिद्धि : – इस सिद्धि से योगी को अद्भुत शक्ति प्राप्त हो जाती है कि वह इन्द्रियों के सहित भौतिक शरीर से भी मन की गति से बिना किसी भौतिक बाधा के कहीं भी प्रकट हो सकता है जैसे कि मानों काल तथा देश का बन्धन पूर्णरूपेण समाप्त हो गया हो जिसके लिए कहा गया है कि –

कर्तुमकुर्तुम् अन्यथाकर्तुं शक्तः इति सिद्धः।।

अर्थात् वह असम्भव को सम्भव तथा सम्भव को असम्भव बनाने की क्षमता रखता है। यह योगी को प्राप्त परमात्मा का ही ऐश्वर्य है कि –

सर्वतः पाणिपादं सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्।
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति।।

अर्थात् उसका व्यवहार ऐसा होता है कि मानो सर्वत्र उसके हाथ तथा पैर व्याप्त हों, उसकी आँखें, सिर तथा मुखादि जैसे शरीर में सीमित नहीं अपितु सर्वत्र व्याप्त हैं, उसकी श्रवणादि सभी इन्द्रियाँ सर्वत्र विद्यमान हों जैसे कि वह समस्त भूमण्डल को व्याप्त करके सर्वत्र स्थित हो।

(2) **विकरणभाव सिद्धि** :– इस सिद्धि से योगी को कोई कार्य करने अथवा कोई भी ज्ञान प्राप्त करने के लिए न तो इन्द्रियों की आवश्यकता है और न भौतिक शरीर की। वस्तुतः समस्त कर्मकरणी प्रकृति के गुण योगी के संकल्पमात्र से इच्छित परिणाम प्रकट कर देते हैं।

(3) **प्रधानजय सिद्धि** : – इस सिद्धि में योगी का कार्य तथा कारण रूप में स्थित प्रकृति के सभी अनन्त भावों पर अधिकार सा हो जाता है। इसी स्थिति का वर्णन महर्षि पतंजलि ने इस रूप में किया है कि –

''तदर्थमेव दृष्यस्य आत्मा ।।''

(योगदर्शन 2/)

अर्थात् दृश्य के रूप में प्रकृति आत्मस्थ दृष्टा के लिए ही कारण रूप में सर्वकार्य करती है। इसी को योगी का दृष्टारूप में प्रकृति पर विजय कहा गया है। संसार के समस्त प्राणी मायाधीन कहे जाते हैं किन्तु प्रधानजय के बाद योगी मायाधीश बन जाता है। हमारे शास्त्रों का कथन है कि यह संसार भ्रान्तिमूलक है, क्योंकि –

भ्रान्तिज्ञानेन पश्यन्ति जगत्रूपमयोगिनः।
आत्मा हि क्षेत्रज्ञसंज्ञोऽयं संयुक्तः प्राकृतैः गुणैः।।
तैरेव विगतः शुद्धः परमात्मा निगद्यते।
मनोवृत्तिमयं द्वैतं अद्वैतं परमार्थतः।।

अर्थात् यह संसार अज्ञान के कारण अयोगियों को दृश्यरूप में दिखाई दे रहा है, यह द्वैतसंसार मनोवृत्तियों की उपजमात्र है, सत्य तो केवल अद्वैत आत्मस्वरूप है। भ्रान्तिज्ञान का कारण आत्मा की मायिक तत्वों से एकाकारिता यानि अभेदज्ञान है। जैसे ही योगी को आत्मा तथा बुद्धि के भेद का ज्ञान हो जाता है वैसे ही भ्रान्तिज्ञान तथा भ्रान्ति से विकल्पित संसार तथा माया नष्ट हो जाती है और तब वह योगी सर्वज्ञ हो जाता है, परमात्मभाव को तथा उसके ऐश्वर्य से सम्पन्न हो जाता है। इसी को माया के अनन्त भावों तथा रहस्यों पर विजय कहा गया है। ऐसे योगी की स्थिति का वर्णन इस प्रकार किया गया है कि –

यथोदकं शुद्धे शुद्धमासिक्तं तादृगिव भवति।
एवमेव मुनेः विजानतः आत्मा भवति गोतम।।
यः सर्वज्ञः सर्वविद् यस्यैषः महिमा भुवि।
दिव्ये ब्रह्मपुरे ह्येषः व्योम्नि आत्मा प्रतिष्ठितः।।

अर्थात् जिस प्रकार शुद्ध जल अन्य शुद्ध जल में मिलकर ठीक वैसा ही शुद्ध हो जाता है उसी प्रकार सर्वज्ञ योगी की विशुद्ध चित्त में प्रकाशित आत्मा परमात्मा में मिल जाती है। अत: शरीर में विशुद्ध बुद्धि में प्रकाशित परमात्मभाव में स्थित योगी सर्वज्ञ, सर्वात्मा तथा ईश्वर के ऐश्वर्य से सम्पन्न होकर असक्त तथा निर्लिप्त भाव से मायिक संसार में रमण करता है।

●●●

योगेश्वर मैं तुम्हारी दया चाहती हूँ

– श्रीमती डॉ. नमिता राकेश सिंह सिसौदिया, इन्दौर (म.प्र.)

योगेश्वर मैं तुम्हारी दया चाहती हूँ – योगेश्वर ....
मैं आशा का दामन भक्ति से भरकर
मीरा के भावों को उसमें संजो के
मैं श्रद्धा के फूल लिये आ रही हूँ
लिये आ रही हूँ – योगेश्वर .....

मैं उषा की किरणों का हार बना कर
संध्या की आभा को उसमें पिरोकर
मैं चन्दा का ताज लिये आ रही हूँ
लिये आ रही हूँ – योगेश्वर ....

मैं प्राणों की माटी का दीपक बनाकर
आत्मा की ज्योति से उसे जगमगा कर
मैं 'मोहन' की आरती लिये आ रही हूँ
लिये आ रही हूँ, योगेश्वर .....

क्षण भंगुर–काया में तुमको बसाकर
तुम्हरी लौ की लगन लगाकर
मैं गुरु की शरण पाना चाहती हूँ
योगेश्वर मैं तुम्हारी दया चाहती हूँ.....

●●●

करता हूँ जय जय कार

– जगदीश राए बंसल 'अधम', नई दिल्ली, मो.: 09212434003

तर्ज : मन डोले – तन डोले

(टेक) दिन में आओ–रात में आओ, बैठा हूँ तैयार,
गुरु जी मैं करता हूँ जय जय कार।।

दीक्षा दे कर भूल गए हो, मैं रटता हूँ बारम्बार
अपराधी हूँ तो दण्डित कर दो, मारो जुते हजार।
इसी बहाने – दर्श सुहाने, दे दो मेरे करतार।
गुरु जी मैं ....(1)

नई नई कारें आ कर रुकती, आप नहीं पधारे हो
कपूत अगर मैं कपटी बच्चा, गुरु तो आप हमारे हो
ध्यान में आओ, लाड़ लड़ाओ, मुस्काओ बारम्बार।
गुरु जी मैं ....(2)

दुखी जनों पर कृपा करते, शक्ति के हो दाता
हे सिद्धेश्वर, हे हितेश्वर, पीड़ा के हो हरता
जोत जगाओ – तिमिर मिटाओ, मेरी बड़ी सरकार।
गुरु जी मैं ....(3)

दिन दिन मेरी उमरिया बीते, सुन लो लीला धारी जी
बिन पूछे यमराज बुलाले, उत्तर देना गिरधारी जी
अधम को दर्शन, गुरु जी प्रश्न्न, न्यौता करो स्वीकार।
गुरु जी मैं ...(4)

● ● ●

योग-आसन

मुक्त पद्मासन

विधि - इसमें केवल इतना अन्तर है कि (पश्चिमेन विधिना) वाली बात को छोड़कर अपने दोनों हाथों को करतल करपृष्ठ की रीति से मुद्रा बनाकर अपने दोनों जंघाओं पर रखे हुए दोनों पैरों की एड़ियों के ऊपर अपने दोनों हाथों के करतलों को जमाकर रख लेना चाहिए।

इसमें पीठ की ओर से घुमाकर उरु स्थलों में रखे पैरों के अँगूठे नहीं पकड़े जाते। अतः इसका नाम मुक्त पद्मासन है।

श्रीगीतामृत - पदावली

लेखक – रामप्रकाश गुप्ता, हल्द्वानी, प्रेषक – डॉ. रुद्रदत्त चतुर्वेदी, गोरखपुर

धृति–उत्साह सदा है, जिसको, अहंकार आसक्ति नहीं।
सिद्धि–असिद्धि सभी में सम है, 'कर्ता सात्विक' पार्थ! वही।।26।।

विषयासक्त, फलेच्छुक, लोभी, दुखद, मलिन जिसके आचार।
हर्ष–विषाद जिसे होते हैं, 'राजन कर्ता' उसे विचार।।27।।

चंचल, मूर्ख, घमंडी, है जो और देर से करता काम।
शोकाकुल हो, पर–अपकारी, 'तामस कर्ता' उसको जान।।28।।

गुण–विभेद से बुद्धि व धृति के तीन भेद होते अर्जुन!
पूर्ण रूप से अलग–अलग बतलाता उनको, ले अब सुन।।29।।

जिससे कार्य–अकार्य, अभय भय औ' हो प्रवृत्ति–निवृत्ति का ज्ञान।
बन्ध मोक्ष का बोध न जिससे; बुद्धि सात्विकी उसको जान।।30।।

उचित रूप से जिसके द्वारा धर्म–अधर्म नहीं हो ज्ञात।
कार्य–अकार्य–विवेक न जिसमें, है वह 'बुद्धि राजसी' तात।।31।।

तम से घिरी बुद्धि वह, अर्जुन! जो अधर्म को धर्म कहे।
उसी बुद्धि को मान 'तामसी', जिसमें उलटा बोध रहे।।32।।

अचल हुए जिस धृति से थे मन–प्राण इन्द्रियों के व्यापार।
करे योग के द्वारा मानव, सात्विक वह धृति पाण्डुकुमार।।33।।

फलाभिलाषी साधन करते जिससे अर्थ, धर्म, औ' काम।
सुन ले तू, हे वीर धनंजय! 'धृति राजसी' उसी का नाम।।34।।

अज्ञान जिसके कारण तजते शोक, विषाद, स्वप्न, मद, भय।
हे नरपुङ्गव अर्जुन! उसको जान 'तामसी धृति' निश्चय।। 35।।

सुन ले, अर्जुन! अब मैं सुख के तीन भेद हूँ बतलाता।
जिस सुख के अनुभव से ही अन्त दुखों का हो जाता।। 36।।

जो पहले होता है विष सा, अमृत-तुल्य जिसका परिणाम।
आत्म-बुद्धि से मिलने वाला 'सात्विक सुख' है उसका नाम।। 37।।

अमृत-तुल्य जो पहले होता, पर जो विष-सा दुखद निदान।
विषयेन्द्रिय से मिलने वाले उस सुख को तू 'राजस' जान।। 38।।

आरम्भ एवं हर समय भी मोह जो मन में भरे।
आलस्य नींद प्रमाद से, उत्पन्न सुख, तामस करे।। 39।।

जग में नभ में, देव गणों में तथा विश्व में और कहीं-
वस्तु न ऐसी है, जो तम, रज और सत्व से व्याप्त नहीं।। 40।।

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र के कर्तव्यों का हुआ विचार।
बाँटे गए कर्म सब उनके, स्वाभाविक गुण के अनुसार।। 41।।

क्षमा, तपस्या, शम, दम, शुचिता, आर्जव तथा ज्ञान-विज्ञान।
आस्तिकता का भाव, धनंजय! उचित कर्म ब्राह्मण का जान।। 42।।

तेज, शूरता, धैर्य, कुशलता, समर भूमि में दृढ़ रहना।
दान तथा शासन, हे अर्जुन! क्षत्रिय-धर्म उचित कहना।। 43।।

स्वाभाविक ही वैश्य-धर्म है खेती, गो-पालन, व्यापार।
और, सभी की सेवा, अर्जुन! शूद्रों का तू धर्म विचार।। 44।।

निज–निज कर्मों में रत रहकर परम सिद्धि नर है पाता।
किंतु सिद्धि यह कैसे मिलती, सुनले, अब मैं बतलाता।। 45।।

जिससे सब उत्पन्न हुए हैं, व्याप्त जगत् में जो रहता।
निज कर्मों से उसे पूजकर, सिद्धि प्राप्त है नर करता।। 46।।

उत्तम श्रेष्ठ सभी धर्मों से हो निज धर्म, भले गुणहीन।
नियत स्वकर्म सदा करने से रहते हैं नर पाप विहीन।। 47।।

अपना कर्म बुरा भी हो यदि, नहीं उचित है उसका त्याग।
दोष सभी कर्मों में होता, यथा धूममय होती आग।। 48।।

अनासक्त औ' पूर्ण जितात्मा तथा न जो है अभिलाषी।
नष्कर्म्य की परम सिद्धि को पा लेता वह संन्यासी।। 49।।

परम सिद्धि को पाकर अर्जुन ! ब्रह्म प्राप्त है हो जाता।
जो है परा ज्ञान की निष्ठा, मैं थोड़े में बतलाता।। 50।।

शुद्ध बुद्धि से युत हो करके, धैर्य–सहित कर आत्म–दमन।
शब्दादिक विषयों को तज, कर राग–द्वेष का पूर्ण शमन।। 51।।

मितहार औ' विजन–वास कर, तन–मन–वाणी वश में कर।
ध्यान–योग में लीन सदा रह वैरागी अर्जुन! बनकर।। 52।।

तज करके बल, दर्प, कामना, क्रोध, परिग्रह औ' अभिमान।
ममताहीन शान्तिमय होकर, हो जाते नर ब्रह्म–समान।। 53।।

ब्रह्मभूत, आनन्दित ये नर, इच्छा, द्वेष नहीं जिनको।
मेरी परा भक्ति हैं पाते, जीव–मात्र हैं सम उनको।। 54।।

(क्रमशः)

मुझे प्रभु का दर्शन मिला

– राघवेन्द्र कुँवर शुक्ल, महुवरिया, मीरजापुर

मेरे मित्र श्री राजेश शर्मा मीरजापुर जिले में कछवा नामक टाउन के रहने वाले हैं। सवांई धाम में अक्सर आना जाना रहा व गुरुमुख भी हुए। मुझे हमेशा प्रभु के विषय में बताते। सिद्ध गुफा के महत्ता को भी बताते। मैं केवल सुनता। मन में श्रद्धा तो थी, पर एत्मादपुर सवांई धाम जाने की दिशा दिखाई नहीं देती थी। मेरे दो बच्चे हैं, बड़ी लड़की व दूसरा लड़का। लड़की शिवांगी तो पढ़ने में ठीक है पर लड़का अभिनव सागर उतने अच्छे नहीं। पुत्र के पढ़ाई को लेकर मैं व मेरी पत्नी सरिता हमेशा चिन्तित रहते हैं। मेरे माता–पिता भी हमेशा चिन्तित रहते हैं। मुझे ही डांटते रहते हैं कि मैं ख्याल नहीं कर रहा हूँ। इसी बीच बेटी का एडमीशन सरस्वती मेडिकल एण्ड डेण्टल कॉलेज में हो गया। इस समय वो बी.डी.एस. कर रही है। बेटा हाईस्कूल की तैयारी कर रहे थे। हम सब यही सोचते रहते थे कि किसी तरह से ये अपनी परीक्षा पास कर जाए। इसी बीच राजेश से बात हुई तो पता चला कि वो सवांई धाम में हैं। वहाँ से पुनः महत्ता पर अपना प्रकाश डाला। मुझे वापस लौट कर सिद्धगुफा का पवित्र रज देने की भी बात कही। उनका कहना था कि उनका बेटा भी इस समय बी.टेक कर रहा है। यह सब प्रभु की ही महिमा का प्रताप है। मेरे मन में भी स्वार्थ की भावना से ओत–प्रोत पवित्र रज की कामना बढ़ गयी। राजेश जी आए और थोड़ा सा रज अभिनव के लिए दिया। इस रज को मैंने तुरन्त अभिनव को दिया। इसी के बाद से वह कुछ पढ़ाई में मन लगाने लगा। परीक्षा हुई। इसी बीच पॉलीटेक्निक में प्रवेश फार्म की जिद करने लगे। उसे भी भरवाया गया। रिजल्ट निकला तो हाईस्कूल परीक्षा जिसे हम सब यही सोचा करते थे कि वो किसी तरह पास हो जाए, लगभग 80 प्रतिशत अंकों के साथ पास किया। यही नहीं पॉलीटेक्निक का प्रवेश परीक्षा भी पास किया। हम परिवार के समस्त सदस्यों ने मिल कर विचार बनाए कि उसे पॉलीटेक्निक करा ही दिया जाए। उसका एडमिशन मीरजापुर राजकीय पॉलीटेक्निक में हो गया। धीरे–धीरे समय व्यतीत होता गया। आए दिन राजेश से बातें भी होती रहती थीं। अचानक पुनः मेरे पास न जाने कहाँ से परेशानी आ पड़ी। मेरा पूरा परिवार चिन्तित हो गया। मेरे ऊपर साढ़े साती का अढ़ैया भी चल रहा है। चिन्ता बढ़ती ही जा रही थी। कहते हैं कि यदि मनुष्य के पास परेशानी न हो तो वह भगवान को याद ही न करे, पर मेरे साथ कुछ अलग ही रहा। राजेश जी मुझे फोन करके सवांई धाम चलने का कार्यक्रम बनाने को कहे। श्री रामनवमी को प्रभु श्री रामलाल जी महाराज का जन्म दिवस मनाने का हम तय किए। आनन फानन में मैं टिकट मीरजापुर स्टेशन जा कर निकाला। श्री रामनवमी के दिन हम सब सवांई धाम में ही मनाएंगे, ऐसा प्रण किये। वाराणसी से हमारा रिजर्वेशन हुआ। हम सवांई धाम 6 लोग पहुँचे। वहाँ रुके। जन्म दिवस मनाया गया। अजीब सी तरंग मेरे पूरे शरीर में प्रवेश करती रही।

जब भी मैं सिद्धगुफा में जाता अनायास ही मेरे आँखों से अश्रुधारा बहने लगती। हमेशा यही याचना करता कि हे प्रभु मेरे कष्ट को दूर करो। धीरे–धीरे समय बीतता रहा। ऐसा लगने लगा कि मेरा कष्ट दूर हो रहा है। पर माह मई का अन्तिम सप्ताह। मैं शीर्डी के सांई बाबा का दर्शन करने का कार्यक्रम बनाया था, राजेश जी हरिद्वार का। पर पुत्र अभिनव के प्रैक्टिकल परीक्षा के कारण मैं कहीं भी न जा सका। इस बीच पुनः मेरे ऊपर वही पुरानी आफत आन पड़ी। मैं विचलित हो गया। मन हुआ कि इस जीवन को ही छोड़ दूं। दिनांक 30 को गंगा दशहरा माँ विन्ध्यवासिनी का दर्शन करने सपरिवार गया। घर पर प्रभु जी की पूजा करते समय अश्रुधारा अपने आप बहने लगी मैं प्रभु से यही कहता रहा कि हे प्रभु! क्या गलती हो रही है जो इतनी बड़ी सजा मुझे मिल रही है। आज मैं विन्ध्याचल चल रहा हूँ, वहाँ आपका भी दर्शन चाहिए। ऐसा कहते–कहते मेरे आँखों से आँसू बहते ही जा रहे थे। लगभग 7.30 बजे घर से हम विन्ध्याचल के लिए निकले। वहाँ कढ़ाई चढ़ाई गई। विन्ध्याचल दरबार में कढ़ाई चढ़ाये जाने का अर्थ होता है कि वहाँ धाम में ही पुड़ी व हलुआ को बनाकर माँ के चरणों में रखना व वही प्रसाद ग्रहण करना। हम सब उक्त पूड़ी व हुलआ लेकर धाम में गये। अच्छी खासी भीड़ थी। लाईन में लगे। मैं अपने मन्त्र जाप में ही लगा रहा व इधर–उधर प्रभु जी खोज में ही लगा रहता था। जैसे ही माँ के सामने पहुँचा और माँ के चरण में अपना मस्तक रखा तो पुनः यही बात बोला कि हे माँ! क्या प्रभु का दर्शन नहीं होगा। आँखों से आँसू बहते ही जा रहे थे। मेरे पण्डा मेरे पीठ पर हाथ रखकर ठोक कर तेज आवाज में बोले – माता तुम्हारी मनोकामना पूरी करेगी! उठो! मैं कटघरे से बाहर आया। एक बड़ा माला अचानक मेरे गले में पण्डा द्वारा डाल दिया गया। बाहर मैं आकर खड़ा ही हुआ था कि पीछे से किसी ने मेरे कन्धे पर ठोकते हुए बोला ऐ इधर देख! मैं आ गया। मैंने तुरन्त पीछे देखा। एक अजीब भेष में दाढ़ी बढ़ाए मेरे सामने! मुझसे बोले चल निकाल – निकाल मुझे दे दे। मैं कि कर्तव्यविमुढ़ खड़ा रहा। पुनः आवाज गाई – अरे जल्दी कर। मैं अपने पॉकेट में हाथ डाला। एक सिक्का हाथ में आया सामने बढ़ाया। दोनों हाथ आगे कर के वो मेरे हाथों से स्पर्श करते हुए केवल एक सिक्का लिए। मैं बोल बैठा अब यह भी करने लगे? वो कुछ भी नहीं बोले ! केवल मुस्कुरा कर सिक्का हाथ में लिए और जा– जा–जा तीन बार बोले और अन्तर्धान हो गये। मैं आश्चर्य से देखता ही रह गया। प्रभु जी मुझे दर्शन दे गये और मैं कुछ कह भी नहीं पाया। चारों तरफ ढूंढा पर कहीं दिखाई नहीं पड़े। यहाँ तक कि वो छाया जो मुझे दिखी किसी ने भी नहीं देखा सिवाय मेरी पत्नी सरिता के। वापस आकर मैं राजेश जी से बात की। राजेश जी हरिद्वार के त्रिवेणी घाट पर स्नान करने के पश्चात् आरती में संलग्न थे। मैं जब उन्हें पूरी घटना बताई तो वो भी आश्चर्य चकित थे। मुझे भाग्यशाली बता रहे थे। वापस घर आया। अपने माता–पिता का पाँव छूकर पूरी घटना बताया। मुश्किल से एक घण्टा भी नहीं बीता था कि मेरे मन में जो परेशानियां थीं वो क्रमशः जाती रहीं। शाम तक पूरी तरह से मैं परेशानियों से दूर हो गया। यह सब मेरे प्रभु श्री रामलाल जी की कृपा का फल ही है। मुझे प्रभु जी का दर्शन मिला, यह मेरे सौभाग्य का फल है। हे प्रभु सबका कल्याण करो!

एक गुरु मंत्र

– श्रीमती शारदा सिसौदिया, इन्दौर (म.प्र.)

एक गुरु नाम, एक गुरु नाम, एक गुरु नाम
सारे जहाँ से न्यारा है, भव सागर का किनारा है।
एक गुरु नाम, एक गुरु नाम, एक गुरु नाम
एक गुरु नाम अन्तर्द्वंद मिटायेगा, अंतरदृष्टि जगायेगा।
एक गुरु नाम, एक गुरु नाम भव सागर को किनारा है।
गुरु मंत्र की पावन गंगा में तुझे डुबोयेगा।
गहरे पानी पैठ मनवा भक्ति माणिक्य पायेगा।
अपना जीवन संवर जायेगा।
घोर विपत्ति के झंझावत से
वही तुझे बचायेगा।
एक गुरु मंत्र, एक गुरु मंत्र से
तू भंवर तर जायेगा।
सारे फासले छोड़ तू उससे नाता जोड़
भव सागर तर जायेगा।
वही तेरी मुक्ति का द्वारा है
एक गुरु मंत्र,
एक गुरु मंत्र
भक्ति श्रद्धा बाना पहन
तू परमानन्द पा जायेगा
मौत भी हक्की बक्की खड़ी रह जायेगी, सिर घूमने लगे जायगी।
ना तुझे मौत का भय होगा
ना माया मोह डस पायेगा
तू खड़ा उन्हें भर मायेगा
गुरु मंत्र की प्रबल शक्ति से तू परम धाम को पायेगा।
भजले मन गुरु नाम, गुरु नाम ही आधार तेरा
चल मन सवाई धाम जहाँ बसे सिद्धेश्वर, परमेश्वर श्री राम
योगे योगेश्वर करेंगे पूरण काम।
एक गुरु मंत्र बस एक गुरु मंत्र
जीव का आधार एक गुरु मंत्र एक गुरु मंत्र

●●●

विनाश के कारणों से बचें

यूं उत्पत्ति और क्षय, विकास और विनाश, जन्म और मृत्यु, उन्नति और पतन तथा सृजन और विध्वंस - ये सब एक ही सिक्के के दो पहलुओं के समान हैं यानी सृष्टि-नियमों के अन्तर्गत इन दोनों स्थितियों का होना प्राकृतिक रूप से अनिवार्य नियम है। इस नियम को बदला नहीं जा सकता, भंग नहीं किया जा सकता, यहां तक कि इसकी अवहेलना या उपेक्षा भी नहीं की जा सकती। प्रकृति प्रतिपल परिवर्तन करती रहती है, सृजन और विनाश करती रहती है, वृद्धि और क्षय करती रहती है, इस क्रम को तो नहीं रोका जा सकता लेकिन जो विनाश और क्षय हम अपने गलत कर्मों से, गलत आचरण से करते हैं उसे रोका जा सकता है। उन कारणों से बचा जा सकता है जो हमारे जीवन में विनाशकारी साबित होते हों। ऐसे कुछ कारणों पर जरा विचार करें।

यदि शासन के मन्त्री एवं अधिकारी लालची, धूर्त और ऐयाश हों तो शासन व्यवस्था का नाश होता है, शासन की नीति अस्थिर, बार-बार बदलने वाली और शोषण करने वाली हो तो प्रजा की सुख-सम्वृद्धि का नाश होता है, रईसों की संगति में संयम और नियम का नाश होता है, पुत्र कपूत साबित हो तो कुल की प्रतिष्ठा का नाश होता है, दुष्ट स्वामी की नौकरी करने से शील का नाश होता है, शराब पीने से लज्जा और मर्यादा का नाश होता है। इसी तरह स्वयं देखभाल न करने से खेती और व्यवसाय का, बराबर सम्पर्क न रखने से प्रीति का, लोभ करने से सम्मान का, क्रोध से विवेक का, ईर्ष्या से स्नेह और झूठ से विश्वास का नाश होता है। अहंकार से यश, चिन्ता से शरीर और अभिमान से प्रतिष्ठा का नाश होता है। अधिक भोगविलास से स्वास्थ्य, बुढ़ापे से सौन्दर्य और निकम्मेपन से प्रारब्ध का नाश होता है। ये नाश के अलग-अलग कारण हैं पर अधर्माचरण करने से तो मनुष्य के पूरे जीवन का ही नाश हो जाता है।

SIDDHYOG Postal Regd. No.: Ag. 19/2009-11 June 2013

प्रेषण कार्यालय :

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक
उच्चकोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सँवाई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER BOOK-POST

श्री/सुश्री ____________

____

____

आसीनो दूरं व्रजति शयनो याति सर्वत:।
कस्तं मदामदं देवं मदन्यो ज्ञातुमर्हति।।

(कठोपनिषद् 1/21)

परब्रह्म परमात्मा अचिन्त्यशक्ति हैं और विरुद्ध धर्मों के आश्रय हैं। एक ही समय में उनमें विरुद्ध धर्मों की लीला होती है। इसी से वे एक ही साथ सूक्ष्म से सूक्ष्म और महान से महान बताये गये हैं। वे परमेश्वर अपने नित्य परमधाम में विराजमान रहते हुए ही भक्ताधीनतावश उनकी पुकार सुनते ही दूर से दूर चले जाते हैं। परमधाम में निवास करने वाले पार्षद भक्तों की दृष्टि में वहाँ शयन करते हुए ही वे सब ओर चलते रहते हैं। अथवा वे परमात्मा सदा-सर्वदा सर्वत्र स्थित हैं। वे सर्वत्र सब रूपों में नित्य अपनी महिमा में स्थित हैं।

संस्थापक:— योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज। मुद्रक एवं प्रकाशक डॉ. दासलाल शर्मा के लिए राष्ट्रीय ब्लॉक एवं प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा–3 से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सवाँई (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित। आर.एन.आई. नं. UPHIN/2004/14586. सम्पादक : आचार्य ब. (डॉ.) दासलाल शर्मा